प्रथम संस्करण
१९५५

अनुवादक
बालकृष्ण एम० ए०

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

कृष्णचन्द्र एम० ए०

स्वराज्य के पचास वर्ष बाद



राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली–६

प्रथम संस्करण
१९५५

अनुवादक
बालकृष्ण एम० ए०

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

सच पूछिये तो मुझे इन पृष्ठों में से कोई पृष्ठ पसन्द नहीं है। घुड़-दौड के 'टिप' बहुधा गलत निकलते हैं। मैं कई बार धोखा खा चुका हूँ और समाचार-पत्र के रेस-ऐक्सपर्ट की जान को रो चुका हूँ। रूई, सोने-चादी और पटसन के भाव भी बदलते देखे गए हैं। सोना तो भला सोना है, परन्तु चादी का भाव भी आजकल इस तरह बढ रहा है कि कुछ समझ में नहीं आता कि कौन-सी धातु अच्छी है—सोना या चादी! यही अवस्था मिलों, बैंकों और कम्पनियों के हिस्सो की है। इनमें इतनी तेजी-मन्दी दिखाई देती है कि मैंने तो अब यह पृष्ठ देखना ही छोड दिया है। पहला पृष्ठ भी मैंने पढ़ना छोड दिया है। कभी यह मेरा मन-पसन्द पृष्ठ था। परन्तु लगातार दो वर्ष तक इस पृष्ठ के खूनी और भर्रा देने वाले समाचार पढ़कर मुझे दिल की धडकन की बीमारी हो गई है और अब डाक्टरों ने मुझे यह पृष्ठ पढ़ने से रोक दिया है। जो लोग नहीं चाहते कि उनकी मृत्यु हृदय-रोग से हो, उनके लिये भी यह परहेज लाभदायक रहेगा।

आजकल मेरा मन-पसन्द पृष्ठ वह है जो पहला पृष्ठ उलटने के बाद आता है—अर्थात् दूसरा पृष्ठ, जिस पर केवल विज्ञापन होते हैं। मेरे विचार में यह समाचार-पत्र का सबसे सच्चा, सबसे अच्छा और सबसे मनोरजक पृष्ठ होता है। यह लोगों के व्यापारिक लेन-देन और कारोबार का पृष्ठ है, उनकी निजी व्यस्तताओ का चित्र है, उनके जीवन सामाजिक तथ्यों की अभिव्यक्ति है। यहा पर आपको कार-वाले बेकार टाइपिस्ट और मिल-मालिक, मकान की तलाश करने वाले बेचने वाले, गैरिज ढूंढने वाले, निजी पुस्तकालय बेचने वाले, पालने वाले, चूहे मारने वाले, सरसो का तेल बेचने वाले, और ों का तेल निकालने वाले, पचास लाख का मिल खरीदने वाले, और पचास रुपये की ट्यूशन करने वाले—सभी भागते-दौडते चीखते-चिल्लाते हुए दिखाई देते हैं। यह हमारे जीवन का सब से जीता-जागता पृष्ठ है जिसका प्रत्येक विज्ञापन स्वयं अपने में एक पूरी कहानी

मेरा मन-पसन्द पृष्ठ

१.

कुछ लोग सुबह उठते ही जम्भाई लेते हैं, कुछ व्यायाम करते हैं, और कुछ गरम-गरम चाय पीते हैं। मैं सुबह उठते ही समाचार-पत्र पढ़ता हूँ, और जिस दिन मेरे पास अवकाश का समय अधिक होता है उस दिन तो मैं समाचार-पत्र को आदि से लेकर अन्त तक—विज्ञापनों और अदालती नोटिसों सहित—पढ़ डालता हूँ।

यूं तो समाचार-पत्र सारे का सारा अच्छा होता है, परन्तु साधारण लोगों के लिये उसका प्रत्येक पृष्ठ समान दिलचस्पी नहीं रखता। मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं जो समाचार-पत्रों में केवल 'रेस' के 'टिप' पढ़ते हैं। या बहुत से व्यक्ति केवल वह पृष्ठ पढते हैं जिसमें सोना, चांदी, फल्ड़े, तांबा, रूई, पटसन, गुड आदि के भाव प्रकाशित होते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो किसी पत्र का पहला पृष्ठ ही पढते हैं जिस पर अधिकांश में बड़े भयानक समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपते हैं। इन समाचारों में बहुधा हत्या, डाके, चोरी, धोखेबाजी और मार-पीट की घटनाएं सम्मिलित होती हैं और इन्हें मोटे-मोटे शीर्षकों के साथ छापा जाता है। कुछ लोग समाचार-पत्र हाथ में आते ही उस पृष्ठ को पढते हैं जिसे 'सम्पादकीय' पृष्ठ कहा जाता है और जिसमें यदि आज किसी बात के पक्ष में लिखा जाता है तो कल उसके विरुद्ध उसी जोर और जिम्मेदारी के साथ लिखा जाता है। यदि पहले दिन आप उस बात के पक्ष में हैं तो दूसरे दिन आप उसके विरुद्ध हो जाते हैं। यार लोगों ने इस स्थिति का नाम 'जन-मत' रख छोड़ा है। अपनी-अपनी सूझ-बूझ ही तो है।

सोचते जाइये और देखिये कि जीवन कितना दिलचस्प होता जा रहा है।

इससे अगला कालम देखिये। यह मकानो का कालम है। आजकल मकान कहीं ढूंढ से भी नहीं मिलते, परन्तु इन कालमो में आपको हर तरह के मकान मिल जाएगे। "मेरे पास समुद्र के किनारे एक बगले में एक अलग कमरा है। परन्तु मै शहर में रहना चाहता हूँ। यदि कोई सज्जन मुझे शहर में एक अच्छा-सा कमरा दे सकें तो मै उन्हें समुद्र के किनारे का अपना कमरा उसके सामान के साथ दे दूंगा। सामान में एक सोफा-सैट्, दो टेबल-लैम्प और एक पीतल का लोटा सम्मिलित है।"

लीजिये, यदि आप शहरी जीवन से उकता गए हों तो समुद्र के किनारे जाकर रहिये। यदि आप समुद्र के किनारे रहने से घबराते हों तो शहर में जाकर रहिये।

यह दूसरा विज्ञापन देखिये—"किराए के लिये खाली है, नया मका।, आठ कमरे, दो किचन, स्नान-गृह और गैरिज भी है। मकान के ऊपर छत अभी नहीं है, परन्तु अगले महीने तक तैयार हो जाएगी। किराएदार तुरन्त ध्यान दें।" आप यह विज्ञापन पढकर तुरन्त उधर ध्यान देते हैं बल्कि कपडे बदलकर चलने का निश्चय भी कर लेते हैं कि इतने में ी दृष्टि अगली पक्ति पर पडती है। लिखा है—"किराया उचित, एक वर्ष का पेशगी देना होगा। वार्षिक किराया अठारह हजार ।" और आप फिर बैठ जाते हैं और अगला विज्ञापन देखते हैं।

अगले विज्ञापन में लिखा है—"उत्तम भोजन, सुन्दर दृश्य, फर्नीचर से सुसज्जित खुला कमरा, बिजली पानी मुफ्त। सब मिलाकर किराया ३५०) माहवार।" आप हर्षोन्मत्त होकर चिल्ला उठते हैं—मिल गया, मुझे एक कमरा मिल गया। कितना सस्ता और अच्छा, और खाना साथ में। वाह, वाह! आप तुरन्त पत्र लिखने की सोचते हैं, और फिर कलेजा थामकर बैठ जाते हैं क्योंकि आगे लिखा है—'दिलकश होटल, दार्जि-

रहे हैं। एक सुन्दर कुत्ता है जो १५०) में बिक रहा है। शेक्सपीयर के नाटकों का सचित्र संस्करण है जो दस रुपये में बिक रहा है। यह मैंने बहुधा देखा है कि कुत्तों के दाम पुस्तकों से कहीं अधिक होते हैं। मैंने यह भी देखा है कि मोटरों और कुत्तों को बेचने और खरीदने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु पुस्तकों के केवल बेचने वाले होते हैं खरीदने वाला कोई नहीं होता। इस कालम के विज्ञापनों में हमें अपने देश की महान संस्कृति का प्रतिबिम्ब मिलता है।

इस पृष्ठ का वह कालम जिसे मैं सबसे पहले पढ़ता हूं विवाह का कालम है। "वर की आवश्यकता है—एक अठारह वर्षीया सुन्दर ग्रेजुएट लड़की के लिये।" "वर की आवश्यकता है, एक लम्बे क़द की और हंस



मुख और अत्यन्त सुन्दर लड़की के लिये जो नाचना-गाना भी जानती है

मनोविज्ञान-विशेषज्ञ

२

. . .

आजकल सुनते हैं कि अमरीका में मनोविज्ञान के विशेषज्ञों ने मानव-ज्ञान के कोष में बड़ी मूल्यवान् वृद्धि की है। उनके मतानुसार संसार में मानवीय रोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। ये रोग केवल मनुष्य के मन के वहम हैं। अर्थात्, यदि आपको कोढ़ है तो वास्तव में आपको कोढ़ नहीं है वरन् यह आपके मन का वहम है। यदि आपको अधरंग मार गया है तो वास्तव में आपके मस्तिष्क में भ्रमपूर्ण विचार उत्पन्न होने के कारण आपको ऐसा प्रतीत होता है। जिस दिन आपके मस्तिष्क में से यह बात निकल गई उसी दिन आपका कोढ़ या अधरंग स्वतः ठीक हो जाएगा। ये विशेषज्ञ प्रत्येक रोग को मस्तिष्क की किसी विकृत अवस्था से सम्बन्धित मानते हैं। ये विशेषज्ञ इस प्रयत्न में लगे रहते हैं कि किसी न किसी तरह रोगी के मस्तिष्क ` उस विकार-युक्त विचार से खाली करा दिया जाए। और यदि यह सके तो कम से कम रोगी की जेब को तो अवश्य ही खाली करा जाए।

विख्यात अमरीकी मनोविज्ञान-विशारद डा० मैक ग्रेगरी का कहना कि मनुष्य के केवल शारीरिक रोग ही नहीं वरन् उसकी अनुभूतियां, [redacted]नाएं और विचार-प्रवृत्तियां भी इसी प्रकार के मानसिक वहम एवं उलझन के परिणाम होते हैं। उनका मत है कि यदि आप ग़रीबों से प्रेम करते हैं तो यह आपका भ्रम है, वास्तव में आप उनसे घृणा करते हैं और इस घृणा को प्रेम के पर्दे में छिपाकर अपने आपको धोखा दे

सच पूछिये तो मुझे इन पृष्ठों में से कोई पृष्ठ पसन्द नहीं है। घुड़-दौड़ के 'टिप' बहुधा गलत निकलते हैं। मैं कई बार धोखा खा चुका हूं और समाचार-पत्र के रेस-ऐक्सपर्ट की जान को रो चुका हूं। रूई, सोने-चांदी और पटसन के भाव भी बदलते देखे गए हैं। सोना तो भला सोना है, परन्तु चांदी का भाव भी आजकल इस तरह बढ़ रहा है कि कुछ समझ में नहीं आता कि कौन-सी धातु अच्छी है—सोना या चांदी! यही अवस्था मिलों, बैंकों और कम्पनियों के हिस्सों की है। इनमें इतनी तेजी-मन्दी दिखाई देती है कि मैंने तो अब यह पृष्ठ देखना ही छोड़ दिया है। पहला पृष्ठ भी मैंने पढ़ना छोड़ दिया है। कभी यह मेरा मन-पसन्द पृष्ठ था। परन्तु लगातार दो वर्ष तक इस पृष्ठ के खूनी और भर्रा देने वाले समाचार पढ़कर मुझे दिल की धड़कन की बीमारी हो गई है और अब डाक्टरों ने मुझे यह पृष्ठ पढ़ने से रोक दिया है। जो लोग नहीं चाहते कि उनकी मृत्यु हृदय-रोग से हो, उनके लिये भी यह परहेज लाभदायक रहेगा।

आजकल मेरा मन-पसन्द पृष्ठ वह है जो पहला पृष्ठ उलटने के बाद आता है—अर्थात् दूसरा पृष्ठ, जिस पर केवल विज्ञापन होते हैं। मेरे विचार में यह समाचार-पत्र का सबसे सच्चा, सबसे अच्छा और सबसे मनोरंजक पृष्ठ होता है। यह लोगों के व्यापारिक लेन-देन और कारोबार का पृष्ठ है, उनकी निजी व्यस्तताओं का चित्र है, उनके जीवन सामाजिक तथ्यों की अभिव्यक्ति है। यहां पर आपको कार-वाले बेकार टाइपिस्ट और मिल-मालिक, मकान की तलाश करने वाले बेचने वाले, गैरिज ढूंढने वाले, निजी पुस्तकालय बेचने वाले, पालने वाले, चूहे मारने वाले, सरसों का तेल बेचने वाले, और ...ों का तेल निकालने वाले, पचास लाख का मिल खरीदने वाले, और पचास रुपये की ट्यूशन करने वाले—सभी भागते-दौड़ते चीखते-चिल्लाते हुए दिखाई देते हैं। यह हमारे जीवन का सब से जीता-जागता पृष्ठ है जिसका प्रत्येक विज्ञापन स्वयं अपने में एक पूरी कहानी

जाएगा, जिससे दूसरे भयानक रोगो की भाति मानवीय प्रेम के रोग की भी रोक-थाम की जा सकेगी। अमरीकी बच्चों के लिये इस औषधि का टीका तैयार किया गया है जो उनके जन्म के समय उन्हें लगा दिया जाएगा। बल्कि यह चेचक के टीके से भी पहले लगाया जाएगा क्योंकि अमरीकी डाक्टरो का मत यह है कि यह रोग कोढ़, तपेदिक आदि से भी अधिक भयानक है। वॉल-स्ट्रीट के बैंकरों ने पचास अरब डालरों की पूजी से एक कारखाना स्थापित किया है जहा इस औषधि का अतुल परिमाण में निर्माण किया जाएगा। वहा के डाक्टरो और राजनीतिज्ञों का विचार है कि इस महान् औषधि से केवल अमरीकी लोग ही क्यों लाभ उठावें, ससार भर के मनुष्यो को क्यो न इस अमृत का लाभ पहुँचाया जाए। अत. यह सोचकर अमरीकी प्रतिनिधि ने यू एन. ओ में यह सुझाव रखा कि ससार-भर की जन-सख्या को यह औषधि पिलाई जाए। परन्तु यथापूर्व रूसी प्रतिनिधि ने इस सुझाव का विरोध किया। यद्यपि यह औषधि अमरीकी कारखाने में, अमरीकी डाक्टरों की देख-रेख में और पूर्णतया अमरीकी पूंजी से तैयार होकर अमरीकी प्रबन्धको के तत्त्वावधान में बिना मूल्य के लोगों में बाटी जाती, परन्तु रूसी प्रतिनिधि ने अपने वीटो-अधिकार से काम लेकर इस सुझाव को रद्द कर दिया। यू. एन. ओ का बहुमत, जिसमें भारत भी सम्मिलित है, [illegible]के पक्ष में था। केवल एक इसी बात से प्रकट होता है कि रूस किस प्रजातन्त्रवाद का शत्रु है और अपने 'वीटो-अधिकार' का मनुष्य की के विरुद्ध प्रयोग करता है।

अस्तु, इस बात को छोड़िये। मैं अपना लेख केवल वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में ही लिखना चाहता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि विज्ञान का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। मैं औषधि-विज्ञान की बात कर रहा था। इससे मुझे विख्यात अमरीकी सर्जन मिस्टर फिलफिल डूलिटिल की आश्चर्यजनक सर्जरी का ध्यान आता है। अमरीका में सर्जरी-विद्या ने फिलफिल डूलिटिल तथा उसके

रहे हैं। प्रेम और घृणा एक-दूसरे की विषम भावनाएं हैं। यदि आप हड़ताल कर रहे हैं तो वास्तविक बात यह है कि यह आपका वहम है कि आप हड़ताल करना चाहते हैं अन्तर्चेतना की किसी तह में कहीं यह विचार छिपा हुआ है कि आप क्यों काम करें और क्यों न आराम से बैठकर रोटी खाएं और दूसरों को अपना काम करने दें। अर्थात् आप हड़ताल इसलिए कर रहे हैं कि आपके अन्दर पूंजी-वादी प्रवृत्ति काम कर रही है। दूसरे शब्दों में जो मजदूर होता है वह अन्दर से पूंजीवादी होता है और जो पूंजीवादी होता है वास्तव में मज-दूर होता है। यदि इस बात का और अधिक विश्लेषण किया जाए तो न कोई मजदूर है, न पूंजीपति। यह केवल आपका मानसिक विकार एवं वहम है। शायद यही कारण है कि आजकल अमरीका में पागलों की संख्या बढ़ रही है। ज्यों-ज्यों अमरीकी मनोविज्ञान की उन्नति हो रही है मानवी अन्तर्चेतना में नित्य नये विकारों की उपस्थिति का ज्ञान होता जाता है। यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि एक दिन अमरीकी मनोविज्ञान-विशेषज्ञ यह पता लगा लेंगे कि मनुष्य मान-सिक विकारों एवं साक्षात् पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। और यह परमाणु-बम के बाद दूसरा आविष्कार होगा जिससे अमरीकी संस्कृति की जड़ें मजबूत होंगी।

डा० पैंगरी ने इसी सिद्धान्त के अनुसार मानवी प्रेम को मानसिक विकार का एक रूप घोषित कर दिया है। उन्होंने एक औषध भी तैयार की है जिसको पीते ही मनुष्य के हृदय में से प्रेम की भावनाएं लुप्त हो जाती हैं। पैनस्लीन के बाद यह दूसरी बड़ी महौषधि है जिसे अमरीकी औषध-विज्ञान ने संसार के सामने प्रस्तुत किया है। सुना है कि इस औषध का सेवन सारी अमरीकी जनता को कराया जाएगा और अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन स्वयं इसमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। बल्कि सबसे पहले इस औषध को स्वयं उन्होंने और मिस्टर मार्शल ने चखा था। इसका अनुसंधान बहुत सफल हुआ है, इसलिये अब पूरे अमरीकी राष्ट्र पर इसका प्रयोग किया

आपके गजे सिर पर बाल उगा सकते हैं। ये लोग ऐसा कर सकते हैं कि आप आंखो से सुन सकें, कानों से देख सकें, नाक से चख सकें और मुंह से सूघ सकें। इनमें सबसे अधिक विलक्षण चमत्कार जॉन नामक हब्शी के सम्बन्ध में हुआ था। उसका रग काला था, परन्तु डाक्टरों ने इन्जैक्शनो द्वारा उसे गोरा कर दिया। उसके मोटे होंठ उन्होंने पतले कर दिये; उसके काले घुघराले बालो को सीधा और सुनहरा—शुद्ध अमरीकी—कर दिया। उसकी घनी भौहो को कमान की आकृति का बना दिया और उसके आगे बढ़े हुए जबडे को काट-छाटकर अमरीकी जबडा बना दिया।

यह सब कुछ तो हुआ—हब्शी का रग गोरा हो गया, परन्तु उसकी पतलून पूर्ववत् फटी हुई है। उसकी नाक पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर है, परन्तु उसके पाव में जूता नहीं है। उसका जबडा सुन्दर बन गया है, परन्तु उस जबड़े के अन्दर गेहू का एक दाना नहीं गया है। अमरीकी डाक्टरों ने हृदय का एक गन्दा भाग तो काटकर फेंक दिया है, परन्तु वे मानव-हृदय की गन्दगी को दूर नहीं कर सके। उन्होंने लोहे का फेफडा तो बना दिया, परन्तु वे समाज के जीवन को ठीक नहीं कर सके। उन्होंने एक व्यक्ति के शरीर का काया-कल्प करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी, परन्तु वे समाज की आत्मा की कुरूपता को दूर कर सके। वे एक परमाणु को तोडने की सोचते है, परन्तु दो परमा-को मिलाकर एक नई शक्ति को उत्पन्न करने के विरुद्ध हैं। परन्तु राजनीति में बहक चला। भला राजनीति और विज्ञान का आपस सम्बन्ध हो सकता है! शायद मुझे भी एक वैज्ञानिक-विशेषज्ञ आवश्यकता पड़ेगी।

सुनते हैं कि अब अमरीकी मनोविज्ञान-विशारद इस परिणाम पर पहुँच गए हैं कि मनुष्य के सारे कष्टों एव क्लेशों की जड और स्रोत उसका मस्तिष्क है। यह मस्तिष्क सोचता है, काम करता है और जीवन की सारी उलझनें पैदा करता है। इसलिये आजकल वे सोच रहे हैं कि

सोचते जाइये और देखिये कि जीवन कितना दिलचस्प होता जा रहा है।

इससे अगला कालम देखिये। यह मकानों का कालम है। आजकल मकान कहीं ढूंढ से भी नहीं मिलते, परन्तु इन कालमों में आपको हर तरह के मकान मिल जाएंगे। "मेरे पास समुद्र के किनारे एक बंगले में एक अलग कमरा है। परन्तु मैं शहर में रहना चाहता हूं। यदि कोई सज्जन मुझे शहर में एक अच्छा-सा कमरा दे सकें तो मैं उन्हें समुद्र के किनारे का अपना कमरा उसके सामान के साथ दे दूंगा। सामान में एक सोफा-सैट्, दो टेबल-लैम्प और एक पीतल का लोटा सम्मिलित है।"

लीजिये, यदि आप शहरी जीवन से उकता गए हों तो समुद्र के किनारे जाकर रहिये। यदि आप समुद्र के किनारे रहने से घबराते हों तो शहर में जाकर रहिये।

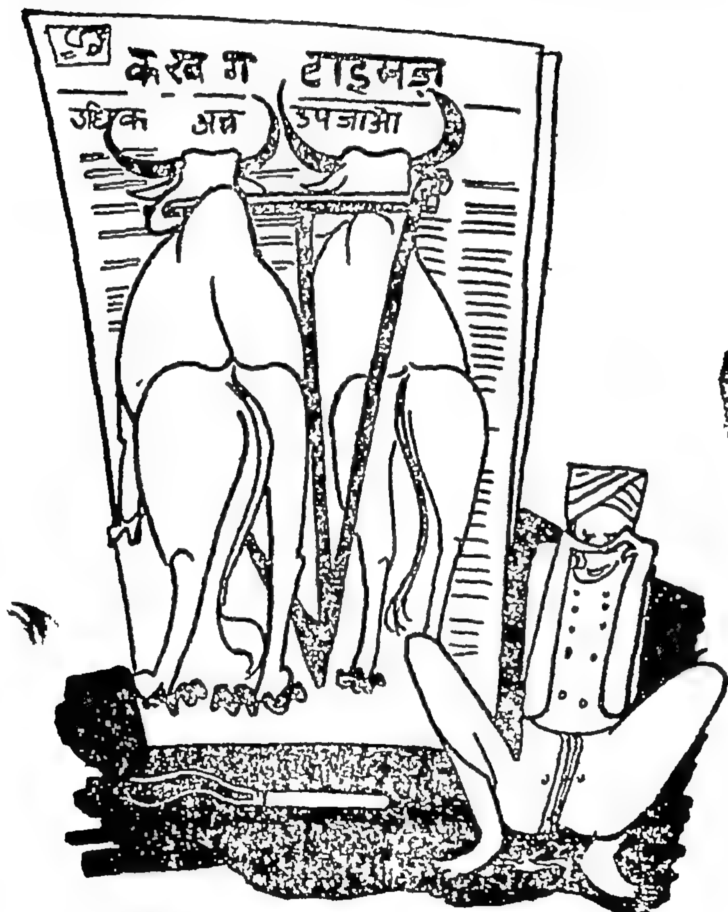
यह दूसरा विज्ञापन देखिये—"किराए के लिये खाली है, नया मकान, आठ कमरे, दो किचन, स्नान-गृह और गैरिज भी है। मकान के ऊपर छत अभी नहीं है, परन्तु अगले महीने तक तैयार हो जाएगी। किराएदार तुरन्त ध्यान दें।" आप यह विज्ञापन पढ़कर तुरन्त उधर ध्यान देते हैं बल्कि कपड़े बदलकर चलने का निश्चय भी कर लेते हैं कि इतने में ी दृष्टि अगली पंक्ति पर पड़ती है। लिखा है—"किराया उचित, एक वर्ष का पेशगी देना होगा। वार्षिक किराया अठारह हज़ार।" और आप फिर बैठ जाते हैं और अगला विज्ञापन देखते हैं।

अगले विज्ञापन में लिखा है—"उत्तम भोजन, सुन्दर दृश्य, फर्नीचर से सुसज्जित खुला कमरा, बिजली पानी मुफ्त। सब मिलाकर किराया ३५०) माहवार।" आप हर्षोन्मत्त होकर चिल्ला उठते हैं—मिल गया, मुझे एक कमरा मिल गया। कितना सस्ता और अच्छा, और खाना साथ में। वाह, वाह! आप तुरन्त पत्र लिखने की सोचते हैं, और फिर कलेजा थामकर बैठ जाते हैं क्योंकि आगे लिखा है—'दिलकश होटल, दार्जि-

अकाल उगाओ !   ३.

. . . .

खाद्य-समस्या मेरे विचाराधीन है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारत में यह समस्या भयंकर रूप धारण कर चुकी है। हम इसके समाधान के लिये कई उपाय काम में ला चुके हैं। सबसे पहले तो हमने



'टाइम्स आफ् इंडिया' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कालमों में 'अन्न उगाओ'

असफल रहे।

उसके पश्चात् हमने केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रियों के भाषण और वक्तव्य उत्पन्न किये। फिर विज्ञापन और बड़े-बड़े पोस्टर उत्पन्न किये और फिर अधिकारियों की एक पूरी विशाल सेना। इन अधिकारियों ने काग़ज़ और क़लम की सहायता से अपनी मेज़ों पर अन्न उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। काग़ज़ और क़लम हमारे लिये बड़ी काम की वस्तु हैं, परन्तु वे धरती और बीज नहीं हैं।

अन्न उगाने के लिये हमें धरती की आवश्यता है और धरती गांवों में होती है दफ्तरों की छतों पर नहीं। इसलिये ये उपाय भी असफल रहे।

यह स्वतन्त्रता के पहले वर्ष की बात है।

स्वतन्त्रता के दूसरे वर्ष में हमें एक नया विचार-सूझा। आज भारत को नए विचारों की आवश्यकता है और ऐसे महानुभावों की आवश्यकता है जो नए-नए विचार उत्पन्न कर सकें। पिछले तीन-चार वर्षों से हम इसी प्रकार के नए-नए विचारों पर जीवन-निर्वाह कर रहे हैं।

चूंकि अन्न की कमी की समस्या का समाधान नहीं हो सका, इसलिये एक नया व्यक्ति एक नया विचार लेकर देश के सामने आया। 'एक समय का भोजन छोड़ दो' का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसे कांग्रेसी मन्त्रियों और संसद के सभासदों का आशीर्वाद भी प्राप्त हो गया।

मैं गरीब आदमी हूँ, इसलिये मैं यह आयोजना, बिना जाने-बूझे आठ वर्ष पहले से ही आरम्भ कर चुका था। मैं प्रतिदिन एक समय भोजन करता था। परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि इस शुभ काम में मुझे बड़े-बड़े नेताओं और संसद के सदस्यों का आशीर्वाद भी प्राप्त है। अब जब कि मुझे इस बात के ऊंचे आदर्श और महान् परिणाम का पता चला तो मैंने निश्चय कर लिया कि इसे गांव-गांव तक पहुंचाकर दम लूंगा। चूंकि हमारे देश की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है, इसलिये

रहे हैं। एक सुन्दर कुत्ता है जो १५०) में बिक रहा है। शेक्सपीयर के नाटको का सचित्र सस्करण है जो दस रुपये में बिक रहा है। यह मैंने बहुधा देखा है कि कुत्तो के दाम पुस्तकों से कहीं अधिक होते हैं। मैंने यह भी देखा है कि मोटरों और कुत्तो को बेचने और खरीदने वाले तो बहुत होते हैं परन्तु पुस्तको के केवल बेचने वाले होते हैं खरीदने वाला कोई नहीं होता। इस कालम के विज्ञापनों में हमें अपने देश की महान् संस्कृति का प्रतिबिम्ब मिलता है।

इस पृष्ठ का वह कालम जिसे मैं सबसे पहले पढता हूं विवाह का कालम है। "वर की आवश्यकता है—एक अठारह वर्षीया सुन्दर ग्रेजुएट लडकी के लिये।" "वर की आवश्यकता है, एक लम्बे क़द की और हंस



मुख और अत्यन्त सुन्दर लडकी के लिये जो नाचना-गाना भी जानती है

और अब हमें खाद्य-समस्या के सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं रही क्योंकि अब हमारे सामने पेड़ो की उपज की यह रफ्तार स्वतन्त्रता की नींव दृढ होने की निशानी है। और इसी का नाम 'उन्नति' है। यदि किसी व्यक्ति को यह उन्नति दिखाई नहीं देती तो वह व्यक्ति कम्यूनिस्ट है या विदेशी एजेंट। उसे तुरन्त जेल में ठूस देना चाहिये।

श्री मुशी का 'पेड़ उगाओ' आन्दोलन नि सन्देह एक बहुत बढ़िया विचार पर आधारित है। उसे इस तरह रखा जा सकता है कि अधिक पेडों का अर्थ है अधिक वर्षा, अधिक उपज और अधिक उपज का अर्थ है अधिक अन्न। देखा आपने ? हमारी अन्न-समस्या का कितनी आसानी से समाधान हो गया।

किसी ने मुझे बताया कि यह श्री मुंशी का अपना विचार नहीं है वरन् एक रूसी विचार है। मुझे यह भी बताया गया है कि रूसी लोग 'स्टेप' के सैंकडो मील लम्बे-चौडे विशाल प्रदेश का जलवायु बदलने के लिये वहा लाखो की सख्या में पेड उगा रहे है। यह समाचार सत्य हो सकता है, परन्तु हमारे लोग भूल जाते है कि जो काम रूसी लोग स्वतन्त्रता के तीस वर्ष बाद कर रहे हैं हम उसे स्वतन्त्रता के तीसरे वर्ष में ही प्रारम्भ कर रहे हैं। और फिर वह भी बिना किसी सार्वजनिक, सामूहिक योजना के।

रूस के नेताओ को अपनी जनता में पहले एक सामाजिक क्रान्ति [illegible] पडी थी। फिर उन्होंने बडे-बडे जमींदारों और जागीरदारों की [illegible] और जागीरें जब्त करके उनकी सारी भूमि किसानों में बांट [illegible] फिर उन्होंने सामूहिक कृषि प्रारम्भ की और तीस वर्ष के भरपूर [illegible] विविध अनुसधानों के बाद अब वे अपने 'स्टेप' के ऊबड-खाबड, [illegible]र प्रदेश को उपजाऊ भूमि में बदलने की ओर ध्यान देने लगे हैं।

परन्तु भारत में हम इन प्रारम्भिक समस्याओं को यू ही फांद गए है। यहा कोई सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई। राजनैतिक क्रान्ति भी नहीं हुई, क्योंकि ऐसी क्रान्तिया हमारे अहिंसा के सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं। यहां

आए, महामारियां आईं और डेढ़ सौ वर्ष तक विदेशी शासन के पंजे में हम लोग जकडे रहे। परन्तु इन सारे कष्टों के होते हुए भी हमारी जन-संख्या बराबर बढ़ती रही और सन् १९४७ में हम ४० करोड हो गए।

अब इस महान् परन्तु कष्टप्रद संख्या की समस्या को सुलझाने के लिये सबसे पहले तो हमने अपने कृपालु, दयावान् और सहृदय साम्राज्यवादियो के साथ मिलकर अपने देश का एक भाग अलग कर दिया और एकदम दस करोड़ की संख्या से पीछा छुड़ा लिया। इस चमत्कार का श्रेय हमारे राजनैतिक नेताओं को प्राप्त है। उनकी दूरदर्शिता और तीव्र बुद्धि की कृपा से हम दस करोड़ जनता के बोझ से क्षण भर में ही मुक्त हो गए। यदि देश का विभाजन न होता तो ये दस करोड लोग हमें अब तक भोजन, वस्त्र और रोजगार के लिये अत्यन्त चिन्तित करते रहते। पाकिस्तान के कडे विरोधियों को कम-से-कम यह-बात नहीं भूलनी चाहिये।

स्वतन्त्रता के चौथे वर्ष में हमारे सारे प्रबन्ध सम्पूर्ण हो चुके है।

अंग्रेजी में एक किवदन्ती है कि किसी वस्तु को प्राप्त करने के तीन उपाय हैं—मागो, उधार लो या चोरी करो। हमने जनता से मांग की कि अधिक अन्न पैदा किया जाए। परन्तु इसमें हमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसलिये फिर हमने प्रयत्न किया कि अमरीका से गेहूँ उधार मिल जाए। इससे भी समस्या का समाधान नहीं हुआ। और तीसरा चोरी का था। सो चोरी तो जनता की हम इतनी कर चुके हैं कि अब उनके पास कुछ रहा ही नहीं है जिसकी चोरी की जा सके।

सो फिर क्या किया जाए? एक और उपाय हमारे पास रह गया है और वह यह कि यदि हम अपनी जन-संख्या के अनुसार अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते तो हमें अपने अन्न के अनुसार अपनी जन-संख्या कम कर देनी चाहिये। सामुदायिक हनन का यह मत अर्थ-शास्त्र के प्रकांड पंडित और महान् दार्शनिक माल्थस का था।

एक दूसरा दार्शनिक और अर्थ-शास्त्र का पंडित भी हुआ है जिसका

मनोविज्ञान-विशेषज्ञ २

. . .

आजकल सुनते हैं कि अमरीका में मनोविज्ञान के विशेषज्ञो ने मानव-ज्ञान के कोष में बडी मूल्यवान् वृद्धि की है। उनके मतानुसार ससार में मानवीय रोगों का कोई अस्तित्व नहीं है। ये रोग केवल मनुष्य के मन के वहम हैं। अर्थात्, यदि आपको कोढ़ है तो वास्तव में आपको कोढ़ नहीं है वरन् यह आपके मन का वहम है। यदि आपको अधरग मार गया है तो वास्तव में आपके मस्तिष्क में भ्रमपूर्ण विचार उत्पन्न होने के कारण आपको ऐसा प्रतीत होता है। जिस दिन आपके मस्तिष्क में से यह बात निकल गई उसी दिन आपका कोढ़ या अधरग स्वत· ठीक हो जाएगा। ये विशेषज्ञ प्रत्येक रोग को मस्तिष्क की किसी विकृत अवस्था से सम्बन्धित मानते हैं। ये विशेषज्ञ इस प्रयत्न में लगे रहते है कि किसी न किसी तरह रोगी के मस्तिष्क को उस विकार-युक्त विचार से खाली करा दिया जाए। और यदि यह न हो सके तो कम से कम रोगी की जेब को तो अवश्य ही खाली करा लिया जाए।

विख्यात अमरीकी मनोविज्ञान-विशारद डा० मैक ग्रेगरी का कहना है कि मनुष्य के केवल शारीरिक रोग ही नहीं वरन् उसकी अनुभूतियां, भावनाए और विचार-प्रवृत्तियां भी इसी प्रकार के मानसिक वहम एव उलझन के परिणाम होते हैं। उनका मत है कि यदि आप ग़रीबों से प्रेम करते हैं तो यह आपका भ्रम है, वास्तव में आप उनसे घृणा करते हैं और इस घृणा को प्रेम के पर्दे में छिपाकर अपने आपको धोखा दे

तीस करोड भारतीयो को तनिक ध्यान में लाइये जिनमें से प्रत्येक के सिर पर ३६ वर्ग इच का खेत होगा। कुल मिलाकर यह क्षेत्रफल इगलैंड के बराबर होगा। इन खेतो पर हम गेहूँ, दालें, चावल, गन्ना, आदि बो सकते हैं। यहाँ हम साग-भाजियों की छोटी-छोटी क्यारिया भी लगा सकते हैं जिनमें गोभी, बेंगन, शलजम, भिंडी, आलू आदि उगाए जा सकते है। और मजे की बात यह है कि यह सब कुछ हमारे सिरों पर उग सकेगा—कारमैन मिराडा की भाति।

मेरे इस प्रतिभाशाली मित्र ने कहा कि "वास्तव में मैंने यह विचार कारमैन मिराडा से ही प्राप्त किया है—मिराडा जो हॉलीवुड की विख्यात सिनेमा-अभिनेत्री है।" मैंने उत्तर दिया, "यह बहुत अच्छी बात है। यदि हमें अमरीकन गेहूँ नहीं मिल सकता तो हमें अमरीकी विचार तो उपलब्ध हो सकते है। इसमें बुराई ही क्या है। तो आओ हम पहले मिनिस्टरों का आशीर्वाद ले लें और इस आन्दोलन का श्रीगणेश कर दें। हमारी पवित्र स्वतन्त्रता तथा 'पब्लिक सेफटी ऐक्ट' के कारण भारत में किसी भी योजना एव आन्दोलन को तब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि उसे राज्य के मंत्रियों का आशीर्वाद प्राप्त न हो जाए।"

परन्तु मेरे मित्र ने निराशापूर्वक सिर हिलाते हुए कहा "इसमें एक है। मुझे डर है कि हमारे मंत्री इस विचार एव योजना से सहमत होंगे। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि कोई मत्री अपनी टोपी टमाटर, प्याज, पटसन या कपास उगाना पसन्द करेगा ?"

"नहीं!" मैंने उत्तर दिया। और हमने इस योजना को त्याग दिया।

अकाल उगाओ' योजना के सम्बन्ध में मै जितना अधिक सोचता हूँ, यह योजना उतनी ही अधिक उचित और उत्तम लगती है। यदि हम जमींदारो, जागीरदारों, चोर-बाजारी करने वालो, और साम्राज्य-वादियो को समाप्त नहीं कर सकते तो आओ हम अकाल के द्वारा जनता को समाप्त कर डालें। यदि हम कुछ अकाल ऐसे उत्पन्न कर सकें जैसा

मेंढ़क की गिरफ़्तारी ४.

बहुत दिनों के बाद झील के किनारे आज फिर वसन्तका आनन्द छाया। किनारे से देखने वाले व्यक्ति को यही प्रतीत होता था कि बहुत से मेंढक झील के किनारे बैठे हुए टर्रा रहे हैं, परन्तु वास्तविक बात यह नहीं थी। वास्तविक बात यह थी कि आज बडा मेंढ़क बडे महल से छूटकर आया था, इसलिये उसकी धर्मपत्नी पुखराज और तीन बेटों—टम्पू, जम्पू और भोंपू—ने झील के किनारे सारे मेंढकों को सहभोज के लिये आमन्त्रित किया था। इस दावत में सम्मिलित होने के लिये दूर-दूर से मेंढक आए थे और उछल-उछलकर बडे मेंढक से, जिसका नाम वसन्तरूप था, गले मिल रहे थे। पुखराज ने बडी झाडी की एक शाखा से जुगनुओ की एक लालटेन लटका रखी थी, जिसकी ठंडी रोशनी में उसका पीला-पीला चेहरा आनन्द-विभोर होकर जगमग-जगमग कर था।

सहभोज के पश्चात् सारे मेंढ़क आलती-पालती मारकर गोल दायरे न्ताए के चारों ओर बैठ गए और उससे बडे महल की बातें पूछने क्योंकि अब तक कोई मेंढक उस बड़े महल के अन्दर, जो झील के [illegible]री किनारे पर स्थित है, नहीं जा सका था। महल के बाग तक तो बहुत से मेंढक हो आए थे और महल की संगमरमर की सीढ़ियो तक पाँव रख चुके थे, परन्तु अन्दर जाने का साहस अब तक किसी मेंढक में नहीं हो पाया था। वसन्तरूप पहला मेंढक था जो महल के अन्दर जाकर वापस आगया था। इसलिये सारे मेंढक यह जानने के लिये अत्यन्त

जाएगा, जिससे दूसरे भयानक रोगो की भाति मानवीय प्रेम के रोग की भी रोक-थाम की जा सकेगी। अमरीकी बच्चों के लिये इस ओषधि का टीका तैयार किया गया है जो उनके जन्म के समय उन्हें लगा दिया जाएगा। बल्कि यह चेचक के टीके से भी पहले लगाया जाएगा क्योंकि अमरीकी डाक्टरो का मत यह है कि यह रोग कोढ़, तपेदिक आदि से भी अधिक भयानक है। वॉल-स्ट्रीट के बैंकरों ने पचास अरब डालरों की पूजी से एक कारखाना स्थापित किया है जहा इस ओषधि का अतुल परिमाण में निर्माण किया जाएगा। वहा के डाक्टरो और राजनीतिज्ञों का विचार है कि इस महान् ओषधि से केवल अमरीकी लोग ही क्यों लाभ उठावें, ससार भर के मनुष्यो को क्यो न इस अमृत का लाभ पहुँचाया जाए। अत. यह सोचकर अमरीकी प्रतिनिधि ने यू एन. ओ में यह सुझाव रखा कि ससार-भर की जन-सख्या को यह ओषधि पिलाई जाए। परन्तु यथापूर्व रूसी प्रतिनिधि ने इस सुझाव का विरोध किया। यद्यपि यह ओषधि अमरीकी कारखाने में, अमरीकी डाक्टरों की देख-रेख में और पूर्णतया अमरीकी पूंजी से तैयार होकर अमरीकी प्रबन्धको के तत्त्वावधान में बिना मूल्य के लोगों में बाटी जाती, परन्तु रूसी प्रतिनिधि ने अपने वीटो-अधिकार से काम लेकर इस सुझाव को रद्द कर दिया। यू. एन. ओ का बहुमत, जिसमें भारत भी सम्मिलित है, इसके पक्ष में था। केवल एक इसी बात से प्रकट होता है कि रूस किस प्रजातन्त्रवाद का शत्रु है और अपने 'वीटो-अधिकार' का मनुष्य की के विरुद्ध प्रयोग करता है।

अस्तु, इस बात को छोड़िये। मैं अपना लेख केवल वैज्ञानिक आविष्कारों के सम्बन्ध में ही लिखना चाहता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि विज्ञान का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। मैं ओषधि-विज्ञान की बात कर रहा था। इससे मुझे विख्यात अमरीकी सर्जन मिस्टर फिलफिल डूलिटिल की आश्चर्यजनक सर्जरी का ध्यान आता है। अमरीका में सर्जरी-विद्या ने फिलफिल डूलिटिल तथा उसके

से कहा, "ओ हरिये ! मैं जानता हूँ तुझे मेरी बातें अच्छी नहीं लगेंगी, क्योंकि मैं फिर जीवित-जाग्रत अवस्था में झील के किनारे वापस आ गया हूँ।"

पुखराज ने जुगनू की लालटैन जोर से हिलाई और जुगनू चमचम करके चमकने लगे। पुखराज ने अपना सुन्दर मुख अपने पति की ओर घुमाकर कहा, "प्यारे ! बहुत से बडे-बडे मेंढक तुम्हारी बातें सुनने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। तुम इस कम्बख्त हरिये की परवाह न करो और आनन्दपूर्वक अपनी कहानी सुनाओ।"

पुखराज की बात सुनकर हरितरूप अपने गले में टर्राकर रह गया। उसके गले से एक ऐसी आह निकली जो ताल और स्वर के हिसाब से उस्ताद फैयाज खाँ के घराने से सम्बन्ध रखती थी। परन्तु फिर उसने उस आह को अपने हृदय में ही दबा लिया और आँखें नीची करके बैठ गया।

वसन्तरूप ने बात की शृंखला को दोबारा जोडते हुए कहा, "तो मैं कह रहा था कि मैं महल की सीढियों पर लेटा हुआ धूप सेंक रहा था और अर्ध-जाग्रत, अर्ध-स्वप्न अवस्था में था कि इतने में मुझे ऐसा लगा मानो किसी ने मुझे अपनी मुट्ठी में दबोच लिया हो। मैंने अपनी अर्ध-... आँखें खोलीं तो अपने आपको महल के राजा के सबसे छोटे ... की मुट्ठी में पाया। मैं ज्यों-ज्यों अपने-आपको उसकी मुट्ठी से ... का प्रयत्न करता, वह दुष्ट लडका जोर-जोर से हँसता। उसकी ... उस समय मुझे बडी भयानक और निर्दयतापूर्ण लग रही थी। और ... उसने अपनी अंगुलियाँ मेरी पसलियों में खुबो दीं तो मैं एकदम ढीला ... गया। फिर वह अपनी मुट्ठी में ही मुझे महल के अन्दर ले गया। ... मेरे शरीर को पूरे बल के साथ पकड रखा था, परन्तु मेरा मुंह उसकी मुट्ठी से बाहर था, इसलिये मैं महल के चौक, बरामदे, खम्बे, बडे-बडे विशाल कमरे और उनके अन्दर रखा हुआ सामान बडी अच्छी तरह देख सकता था। प्रत्येक कमरे में सुन्दर गालीचे बिछे हुए थे।"

और इधर-उधर दौड़ने लगीं। हा हा हा! ये लोग हमारी जाति से कितने डरते हैं।"

बहुत से मेंढक हँसने लगे। भूरा ने सिर उठाकर कहा, "मैं जानता हूँ मनुष्य ऊपर से बहादुर बनता है परन्तु अन्दर से बड़ा कमजोर होता है। और पानी में तो उसके प्राण ही निकलने को हो जाते हैं। अरे, यह क्या खाकर मेंढक का मुकाबला करेगा!"'

बसन्तरूप ने फिर बात की शृंखला को जोड़ते हुए कहा, "उसके बाद जो हुड़दंग मची उसका तो वर्णन हो ही नहीं सकता। बीस-तीस आदमी मेरे आगे-पीछे दौड़ रहे थे, परन्तु मैं किसी के वश में न आता था। राजा हिम्मतसिंह के मुँह से क्रोध के मारे झाग उठ रही थी। अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे चिल्ला रहे थे—'अरे छोड़ना नहीं, देखना जाने न पाए।' अब मैंने छलांग लगाई और राजा साहब के सिर पर सवार हो गया। फिर क्या था! राजा साहब वहाँ से उठकर भागे। मैंने वहाँ से फिर छलांग लगाई और एक दूसरे कमरे में पहुँच गया। अब राजा साहब के छोटे लड़के ने अन्दर से द्वार बन्द कर दिया और मुझे पकड़ लिया। परन्तु मैंने भी बच्चा जी को बहुत परेशान किया। ऐसे थोड़े ही वश में आने वाला था मैं?"

"शाबाश! शाबाश!" बहुत से मेंढक एकदम चिल्लाए।

पुखराज गर्व से अपने पति की ओर देखने लगी।

"फिर क्या हुआ?" भूरा ने पूछा।

"फिर मुझे उस दुष्ट लड़के ने एक टोकरी में बन्द कर दिया। जिसमें कूदक-फुदककर रह गया। टोकरी बहुत मजबूत थी और यद्यपि उसमें सुराख थे, परन्तु वे इतने बड़े नहीं थे कि मैं उनमें से बाहर निकल ।"

"तुम उसमें कितने दिन बन्दी रहे?" दादा ने पूछा।

"दस दिन और दस रातें। परन्तु रातें बहुत व्याकुल करती थीं। जब लड़का अपने कमरे की खिड़की खोल देता था तो झील से आप

आपके गंजे सिर पर बाल उगा सकते हैं। ये लोग ऐसा कर सकते हैं कि आप आंखों से सुन सकें, कानों से देख सकें, नाक से चख सकें और मुंह से सूंघ सकें। इनमें सबसे अधिक विलक्षण चमत्कार जॉन नामक हब्शी के सम्बन्ध में हुआ था। उसका रंग काला था, परन्तु डाक्टरों ने इन्जैक्शनों द्वारा उसे गोरा कर दिया। उसके मोटे होंठ उन्होंने पतले कर दिये; उसके काले घुंघराले बालों को सीधा और सुनहरा—शुद्ध अमरीकी—कर दिया। उसकी घनी भौंहों को कमान की आकृति का बना दिया और उसके आगे बढ़े हुए जबड़े को काट-छांटकर अमरीकी जबड़ा बना दिया।

यह सब कुछ तो हुआ—हब्शी का रंग गोरा हो गया, परन्तु उसकी पतलून पूर्ववत् फटी हुई है। उसकी नाक पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर है, परन्तु उसके पांव में जूता नहीं है। उसका जबड़ा सुन्दर बन गया है, परन्तु उस जबड़े के अन्दर गेहूं का एक दाना नहीं गया है। अमरीकी डाक्टरों ने हृदय का एक गन्दा भाग तो काटकर फेंक दिया है, परन्तु वे मानव-हृदय की गन्दगी को दूर नहीं कर सके। उन्होंने लोहे का फेफड़ा तो बना दिया, परन्तु वे समाज के जीवन को ठीक नहीं कर सके। उन्होंने एक व्यक्ति के शरीर का काया-कल्प करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी, परन्तु वे समाज की आत्मा की कुरूपता को दूर कर सके। वे एक परमाणु को तोड़ने की सोचते हैं, परन्तु दो परमा-को मिलाकर एक नई शक्ति को उत्पन्न करने के विरुद्ध हैं। परन्तु राजनीति में बहक चला। भला राजनीति और विज्ञान का आपस सम्बन्ध हो सकता है! शायद मुझे भी एक वैज्ञानिक-विशेषज्ञ आवश्यकता पड़ेगी।

सुनते हैं कि अब अमरीकी मनोविज्ञान-विशारद इस परिणाम पर पहुंच गए हैं कि मनुष्य के सारे कष्टों एवं क्लेशों की जड़ और स्रोत उसका मस्तिष्क है। यह मस्तिष्क सोचता है, काम करता है और जीवन की सारी उलझनें पैदा करता है। इसलिये आजकल वे सोच रहे हैं कि

बड़े गन्दे होते हैं। जब वे एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो एक-दूसरे के होंठ चूमते हैं।"

"हाय हाय! कितनी गन्दी, असभ्य, वहशी रस्म है!" यह कहकर जरीफा ने घृणा से थूक दिया। उसे सचमुच मनुष्य-जाति से घिन आने लगी थी।

"और उस पर तुर्रा यह कि ये मेंढक को भौंडा और असभ्य समझते हैं।" बसन्तरूप ने घायल गर्व के साथ कहा, "और स्वयं उनका यह हाल है कि उन्हें सभ्यता छू तक नहीं गई। आकृति देखो तो ऊबड़-खाबड़। पुरुषों के तो सारे शरीर पर बाल उगे रहते हैं और मुख पर मूंछ और दाढ़ी होती है। और स्त्रियां अपने सिरों पर बहुत लम्बे लम्बे बालों का झुंड-सा उगाती हैं।"

यह सुनकर जरीफा और शरीफा दोनों चीख पड़ीं और कहने लगीं, "अरे, ये पशु हमारी झील पर आ जाएं तो हम तो कभी इन्हें अपने मुंह न लगाएं।"

"निःसन्देह!" हरितरूप ने गम्भीरता से कहा, "हमारी जाति की स्त्रियां अत्यन्त सुन्दर हैं। संसार की कोई जाति सुन्दरता और शूरवीरता में हमारा मुकाबला नहीं कर सकती।"

उसके बाद कुछ क्षणों तक पूर्ण निस्तब्धता छाई रही। जरीफा, शरीफा, नीलिमा, पुखराज आदि मेंढकियां झील के पानी में अपना प्रति- देख-देखकर आनन्द-विभोर होती रहीं।

फिर बसन्तरूप बोला, "अब चूंकि मनुष्य जाति की मेंढकियों के में बातचीत हो रही है, इसलिए इस सम्बन्ध में दो और बातें , मैं उनका वर्णन पूरा कर देना चाहता हूं। एक तो यह कि राजा के महल में मैंने उनकी मेंढकियों को बहुधा बेवफा पाया—मेंढकियों को भी और उनके मेंढकों को भी। ये लोग ऊपर से प्रेम जताते हैं परन्तु अन्दर से किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करते हैं। अब राजा हिम्मत सिंह को ही ले लो। उसकी सात मेंढकियां हैं।"

राजा की एक लड़की को महल के सुन्दर तालाव में एक लड़के को छेड़ते हुए देखा था।"

"छिः छि.!" पुखराज अपनी गोल-गोल आंखो को घुमाते हुए बोली, "यह तो नितान्त निर्लज्जता है।"

"इसका तो स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उन लोगों को सभ्यता छू तक नहीं गई।" कालेकर बोला।

कालेकर जिस मेंढ़क का नाम था वह झील का सबसे विद्वान् था। मेंढ़कों की भाषा पर जितना अधिक उसे अधिकार था, उतना अन्य किसी मेंढ़क को नहीं था। वह प्रत्येक प्रकार की टर्राहट और उसकी बारीक स्वर-लहरों से परिचित था। मेंढक-बालकों को वही टर्राना सिखाता था। वह उन्हें सिखाता था कि हर्ष के समय कौन-सी टर्रावली प्रयुक्त करनी चाहिये और शोक के समय कौन-सी। अपने मा-बाप से किस तरह बात करनी चाहिये। मेंढ़कों के लिए प्रेम की शब्दावली क्या होती है वह उसे भलीभाति जानता था। उसने पूछा, "भाई बसन्तरूप! मनुष्य की भाषा के सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो?"

"मान्यवर!" बसन्तरूप ने उदासी से सिर झुकाकर उत्तर दिया, "मनुष्य की दो भाषाए होती हैं।"

"दो भाषाए!" कालेकर ने आश्चर्यचचकित होकर कहा—"यह असम्भव है। ससार में प्रत्येक जाति की एक ही भाषा होती है—केवल एक भाषा।"

"परन्तु मनुष्य की दो भाषाए होती हैं—एक तो वह जिसे वे बोलते हैं और दूसरी वह जिसे वे मन में रखते हैं। वे शब्द जो उनके मन में होते हैं, प्राय: जिह्वा पर नहीं आते और जो शब्द वे जिह्वा से बोलते हैं, समझ लीजिये कि वे उनके मन की वास्तविक भावना के विरुद्ध हैं।"

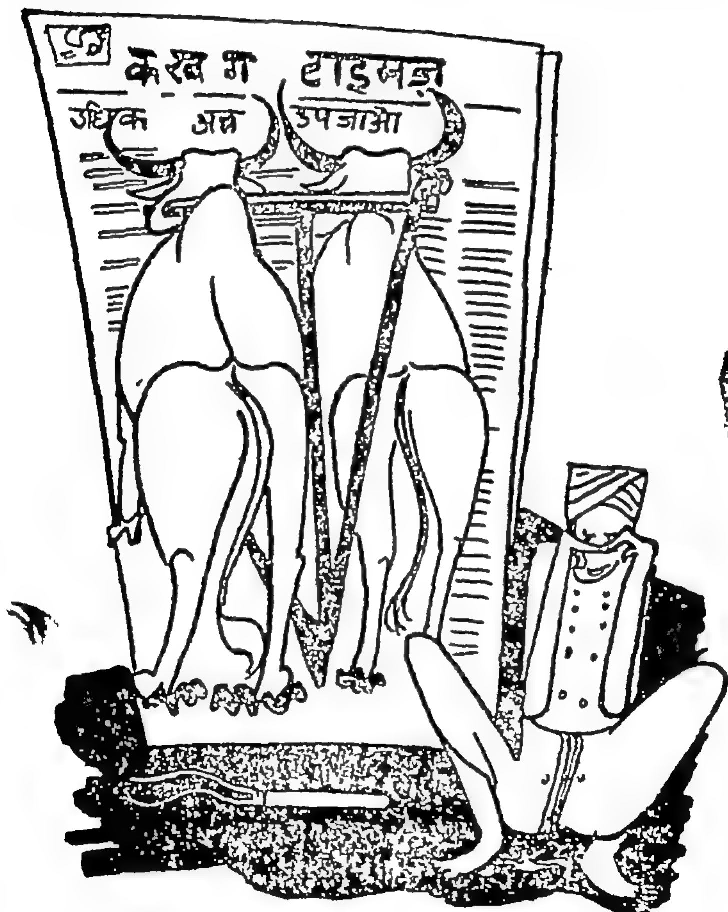
"वह कैसे? मैं समझा नहीं भाई।"

"मान्यवर!" बसन्तरूप ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा, "छोटे

अकाल उगाओ ! ३.

. . . .

खाद्य-समस्या मेरे विचाराधीन है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारत में यह समस्या भयंकर रूप धारण कर चुकी है। हम इसके समाधान के लिये कई उपाय काम में ला चुके हैं। सबसे पहले तो हमने



'टाइम्स आफ् इंडिया' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कालमों में 'अन्न उगाओ'

"परमात्मा का लाख-लाख धन्यवाद है।" बहुत से मेंढ़कों ने टर्रा कर कहा।

इसके बाद कुछ क्षणों तक मौन छाया रहा। फिर दादा ने पूछा, "खैर, अब यह तो बताओ कि तुम उस नरक से निकले कैसे ?"

वसन्तरूप ने मुस्कराकर कहा, "धीरे-धीरे मैं छोटे राजकुमार से हिल-मिल गया—वह मुझे नित्य प्रति भोजन खिलाता था। इसलिए यह स्वाभाविक बात थी कि अब मुझे उसके शरीर से मिलकर घिन नहीं आती थी। न मुझे अब उसकी हथेली से घृणा होती थी। मैं प्राय अब उसके कमरे में फुदकता रहता और कमरे से बाहर न निकलता। राजकुमार मुझसे बातें करता रहता और मैं उत्तर में टर्राता रहता। फिर राजकुमार मुझे बाहर भी ले जाने लगा। एक बार जब हम दोनों तालाब में नहा रहे थे तो एक रानी ने हमें देख लिया और वह जो चीखी है—जो चिल्लाई है—बस आकाश सिर पर उठा लिया—मेंढक मेरे तालाब में कहां से आ गया ?

"अब पूछो भला मेंढक तो पानी का जीव है, फिर तालाब मनुष्य का कैसे हो गया, जो धरती पर उत्पन्न होता है, धरती पर सोता है, धरती पर रहता है और धरती पर मरता है। तो साहब, उस रानी ने मेरे पीछे दो-चार नौकर लगा दिये और मैं जो तालाब से उछलकर भागा हूं तो महल के चौक को फादता हुआ बरामदो में से छलांग लगाता हुआ बाहर उद्यान में आ गया। आगे मार्ग खुला था। और यह तो तुम जानते हो कि दौडने-भागने में और छलांग लगाने में मनुष्य कभी मेंढक का मुकाबला नहीं कर सकता।"

"और गाने में ? गाने के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है ?" शरीफा ने जो गायन-विद्या में बडी निपुण थी, प्रश्न किया।

"गाने की बात तो छोड ही दो। ये मनुष्य तो ऐसे बेसुरे होते हैं कि बाजो के बिना गा ही नहीं सकते। सगीत-कला तो अब मेंढ़को तक ही सीमित रह गई है। इस कला के हम ही उत्तराधिकारी है।"

राजकुमार की मा ने उससे कहा कि तू इस बेचारे मेंढक को छोड़ दे। राजकुमार ने कहा—'अच्छा मा, मैं इसे अभी छोड़ देता हूँ।' परन्तु यह वचन देकर भी उसने मुझे मुक्त नहीं किया, वरन् एक टोकरी से दूसरी टोकरी में और एक कमरे से दूसरे कमरे में बदल दिया।"

दलन्तरप ने दूसरा उदाहरण देते हुए कहा, "राजा ने मेरे सामने एक किसान से कहा—'जा, हम तेरा लगान छोड़ते हैं।' इसके बाद जब किसान चला गया तो राजा ने मुंशी से कहा—'जा, इसकी धरती कुर्क करा ले।'

"तीसरा उदाहरण लीजिये। राजा के बड़े लड़के ने एक लड़की से कहा—'मुझे तुमसे असीम प्रेम है—इतना प्रेम आज तक मुझे किसी अन्य लड़की से नहीं हुआ।' लड़की ने कहा—'प्यारे! मेरे हृदय में केवल तुम ही तुम समाए हो।' इसके बाद लड़का और लड़की दोनों महल में तैरते रहे और कभी-कभी एक-दूसरे के होंठ से होंठ मिलाते रहे। फिर मैंने उस लड़के को महल की एक दासी से भी यही वाक्य कहते सुना और उस लड़की को भी एक अन्य लड़के से इसी प्रकार की बातें करते और होंठ से होंठ मिलाते देखा।

"अब चौथा उदाहरण देता हूँ। राजा हिम्मतसिंह ने बड़े जागीरदार भीमसिंह की दावत की थी। भीमसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। मेरे सामने राजा हिम्मतसिंह उस बूढ़े जागीरदार से हँस-हँसकर बातें करता रहा और फिर मेरे सामने उसने शराब में विष मिलाकर उसे दे दिया, ताकि उसकी जागीर पर अधिकार कर ले।

"एक और उदाहरण लीजिये। परन्तु इन उदाहरणों को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होगा। साराश यह है कि उनके मन में कुछ और शब्द होते हैं और जिह्वा पर कुछ और। इसे वे लोग 'सभ्यता' के नाम से पुकारते हैं।"

ज्ञानेश्वर ने कहा, "परमात्मा का लाख-लाख धन्यवाद है कि मेंढक जाति को केवल एक ही भाषा आती है।"

छलांग लगाने लगे। टम्पू, जम्पू और भोंपू भी चांदनी रात में नहाने के लिये चले गए। अन्त में केवल वसन्तरूप और उसकी सहचरी पुखराज झील के किनारे रह गए। झाड़ी की शाखा से जुगनुओं की लालटेन जगमगा रही थी।

पुखराज ने एक मोहक अदा के साथ वसन्तरूप की ओर देखकर कहा, "यदि मैं तुम्हारे बाद हरितरूप से विवाह कर लेती तो ?"

वसन्तरूप बोला, "लो भई, मेंढ़कों को भी जुकाम होने लगा।"

"जुकाम ? यह क्या कह रहे हो तुम ?"

"पता नहीं, मैंने तो वहां महल में लोगों से ये शब्द सुने थे।"

"झूठ कहते हैं सिरफिरे। हम तो पानी में रहते हैं, फिर हमें जुकाम क्यों होगा! जुकाम होगा उन शूं-शूं करते हुए नकसड़ों को।" यह कहकर उसने फिर एक चित्ताकर्षक अदा से वसन्तरूप की ओर देखा और फिर एकदम छलांग लगाकर झील के पानी में घुस गई। वसन्तरूप जोर से टर्राया और फिर झील में घुस गया और दोनों देर तक साथ-साथ तैरते फिरते रहे।

चांदनी रात थी और उनके चारों ओर कमल के फूल थे।

असफल रहे।

उसके पश्चात् हमने केन्द्रीय और प्रान्तीय मन्त्रियों के भाषण और वक्तव्य उत्पन्न किये। फिर विज्ञापन और बड़े-बड़े पोस्टर उत्पन्न किये और फिर अधिकारियो की एक पूरी विशाल सेना। इन अधिकारियों ने काग़ज़ और क़लम की सहायता से अपनी मेज़ो पर अन्न उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। काग़ज़ और क़लम हमारे लिये बड़ी काम की वस्तु हैं, परन्तु वे धरती और बीज नहीं हैं।

अन्न उगाने के लिये हमें धरती की आवश्यता है और धरती गांवों में होती है दफ्तरो की छतों पर नहीं। इसलिये ये उपाय भी असफल रहे।

यह स्वतन्त्रता के पहले वर्ष की बात है।

स्वतन्त्रता के दूसरे वर्ष में हमें एक नया विचार-सूझा। आज भारत को नए विचारो की आवश्यकता है और ऐसे महानुभावों की आवश्यकता है जो नए-नए विचार उत्पन्न कर सकें। पिछले तीन-चार वर्षों से हम इसी प्रकार के नए-नए विचारों पर जीवन-निर्वाह कर रहे हैं।

चूंकि अन्न की कमी की समस्या का समाधान नहीं हो सका, इसलिये एक नया व्यक्ति एक नया विचार लेकर देश के सामने आया। 'एक समय का भोजन छोड दो' का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसे कांग्रेसी मन्त्रियों और संसद के सभासदो का आशीर्वाद भी प्राप्त हो गया।

मैं गरीब आदमी हूँ, इसलिये मैं यह आयोजना, बिना जाने-बूझे आठ [illegible] पहले से ही आरम्भ कर चुका था। मैं प्रतिदिन एक समय भोजन [illegible] था। परन्तु मुझे यह पता नहीं था कि इस शुभ काम में मुझे बड़े-बड़े नेताओं और संसद के सदस्यों का आशीर्वाद भी प्राप्त है। अब जब कि मुझे इस बात के ऊँचे आदर्श और महान् परिणाम का पता चला तो मैंने निश्चय कर लिया कि इसे गाँव-गाँव तक पहुँचाकर दम लूंगा। चूंकि हमारे देश की अधिकांश जनता गांवो में निवास करती है, इसलिये

के लिये नहीं, वरन् उसके गाउन की उलझी हुई निचली लहरों को सुलझाने के लिये। वेला उसे ऐसा करने देती है और स्नेह युक्त दृष्टि से उसकी ओर देखकर मुस्कराती है। इतने में वेला का 'वटलर' जो आयु से वेला का नौकर नहीं वरन् उसका वाप मालूम होता है, वडे रस भरे ढग से द्वार पर आकर कहता है—]

वटलर—जमशेद जी आए हैं।

वेला—(शीशे के सामने से हटकर) उन्हें अन्दर भेज दो। (एलिजा से) वस अब ठीक है। (एक अदा दिखाकर) देख एलिजा, मैं कैसी लग रही हूँ?

एलिजा—ताजा और खिले हुए फूल जैसी—मानो अभी नहाकर आई हो। (चुपके से) वे आगए, मैं जाती हूँ।

जमशेद—(वेला से) हैलो पट्टो!

वेला—(जमशेद से) हैलो, जिकजिक!

जमशेद—(एलिजा से) हैलो, छम छम! कैसी हो?

एलिजा—अच्छी हूँ, सरकार!

[एलिजा ट्रे और गिलास उठाकर द्वार से बाहर चली जाती है। जमशेद उसको तकता रहता है। जब वह द्वार से बाहर हो जाती है तो एक दम पलटकर वेला को बाहुपाश में लेकर कहता है—]

जमशेद—तुम्हारी एलिजा की चाल बहुत अच्छी है। कैसी छम छम करती हुई चलती है।

वेला—बस कल इसे निकाल दूँगी हटो, छोड दो मुझे।

जमशेद—डार्लिंग! ऐसा मत करना। मैं तुमसे शादी इसीलिये कर रहा था कि दोहरा लाभ रहेगा। तुम्हारे साथ तुम्हारी नौकरानी भी (हँसता है) समझ गई?

वेला—जमशेद, कभी तो गम्भीरता से बात किया करो। जानते नहीं कैसा समय आ रहा है। चारों ओर आग-सी लग रही है।

जमशेद—तो हम चोर-बाजारी करेंगे और तुम्हे 'गुड-बाई' कह देंगे—'टा-टा' । अपने खानदान को तो बस दो ही काम आते हैं । हा, एक तीसरा काम शराब बचने का भी था, परन्तु वह 'मद्य-निषेध कानून' के कारण बन्द हो गया है । अरे हा, कुछ पिलाओगी नहीं क्या ?

बेला—क्या पिओगे ?

जमशेद—होठों की 'वरमाउथ', आखो की शैम्पेन, आलिगन की 'व्हिस्की' ।

बेला—चप्पल की बरांडी नहीं ?

जमशेद—वह शादी के बाद ।

[दोनो हँसते हैं]

जमशेद—नहीं, सच, बडी प्यास लगी है । जल्दी से कुछ पिला दो ।

बेला—(पलट कर निकट की अल्मारी खोलती है जिसमें शराब की बोतलों की पक्तियां दिखाई पडती हैं । फिर जमशेद की ओर मुडकर देखती है ।)—क्या पिओगे ? कोनिक या बोर्वे ?

[जमशेद बेला को बाहो में लेकर उसका चुम्बन ले लेता है । बेला एक सिनेमा अभिनेत्री की भांति एक लम्बा चुम्बन देती है और पीछे की ओर झुक जाती है । चुम्बन के बाद वह एक लम्बा सांस लेती है और अपना चेहरा जमशेद के कन्धे पर रख देती है ।]

जमशेद—कितनी अच्छी शराब थी ?

बेला—कितना लम्बा चुम्बन था ! Kiss me joe वाले चुम्बन की भांति ।

जमशेद—नहीं, उससे दस सैंकिड कम था । (बेला उसकी ओर आश्चर्य चकित नेत्रो से देखती है ।) हा, हां, मै घडी देख रहा था ।

[बेला धीरे से शराब की बोतल उठाकर ड्राइग-रूम के कोने में 'बार' की ओर घूमती है । वहां पहुंचकर बिल्लोर के दो

और अब हमें खाद्य-समस्या के सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं रही क्योंकि अब हमारे सामने पेडो की उपज की यह रफ्तार स्वतन्त्रता की नींव दृढ होने की निशानी है। और इसी का नाम 'उन्नति' है। यदि किसी व्यक्ति को यह उन्नति दिखाई नहीं देती तो वह व्यक्ति कम्यूनिस्ट है या विदेशी एजेंट। उसे तुरन्त जेल में ठूस देना चाहिये।

श्री मुशी का 'पेड उगाओ' आन्दोलन नि सन्देह एक बहुत बढ़िया विचार पर आधारित है। उसे इस तरह रखा जा सकता है कि अधिक पेडों का अर्थ है अधिक वर्षा, अधिक उपज और अधिक उपज का अर्थ है अधिक अन्न। देखा आपने? हमारी अन्न-समस्या का कितनी आसानी से समाधान हो गया।

किसी ने मुझे बताया कि यह श्री मुंशी का अपना विचार नहीं है वरन् एक रूसी विचार है। मुझे यह भी बताया गया है कि रूसी लोग 'स्टेप' के सैकडो मील लम्बे-चौडे विशाल प्रदेश का जलवायु बदलने के लिये वहा लाखो की सख्या में पेड उगा रहे हैं। यह समाचार सत्य हो सकता है, परन्तु हमारे लोग भूल जाते हैं कि जो काम रूसी लोग स्वतन्त्रता के तीस वर्ष बाद कर रहे हैं हम उसे स्वतन्त्रता के तीसरे वर्ष में ही प्रारम्भ कर रहे हैं। और फिर वह भी बिना किसी सार्वजनिक, सामूहिक योजना के।

रूस के नेताओ को अपनी जनता में पहले एक सामाजिक क्रान्ति ` पडी थी। फिर उन्होंने बडे-बडे जमींदारों और जागीरदारों की ' र और जागीरें जब्त करके उनकी सारी भूमि किसानों में बांट फिर उन्होंने सामूहिक कृषि प्रारम्भ की और तीस वर्ष के भरपूर विविध अनुसधानों के बाद अब वे अपने 'स्टेप' के ऊबड-खाबड, र प्रदेश को उपजाऊ भूमि में बदलने की ओर ध्यान देने लगे हैं।

परन्तु भारत में हम इन प्रारम्भिक समस्याओं को यू ही फांद गए हैं। यहा कोई सामाजिक क्रान्ति नहीं हुई। राजनैतिक क्रान्ति भी नहीं हुई, क्योंकि ऐसी क्रान्तिया हमारे अहिंसा के सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं। यहां

एलिज़ा—मुँह का मजा बदलने ने के लिये ?

जमशेद—नही, सच, बडी प्यारी लग रही हो, छमछम ! (आगे बढ़ता है। एलिजा पीछे हटती है।)

एलिज़ा—देखिये, देखिये, वह आपके पीछे कौन है ?

[जमशेद पलट कर देखता है। दूसरे कोने में एक आदमी खद्दर का कुर्ता और धोती पहिने, हाथ में चमडे का थैला उठाये, और आंखो पर ऐनक जमाए खडा है। जमशेद को अपनी ओर मुडता देखकर वह मुस्करा देता है, ऐनक ठीक करता है और गले को साफ करता हुआ एक विलक्षण-सी आवाज़ निकाल कहता है—]

वमन भाई—मै ओल्ड प्रेस से भेजा गया हूँ। मिस बेला बाटलीवाला का इन्टरव्यू करने के लिये।

जमशेद—(निराश होकर उससे हाथ मिलाते हुए) ओ गौश ! (फिर वह तेज़ी से चला जाता है।)

एलिज़ा—अन्दर चलिये। इस समय आपने मुझे एक लम्बे, व्यर्थ, कडुवे और अनचाहे इन्टरव्यू से बचा लिया। धन्यवाद !

[वमन भाई रूमाल से अपना चेहरा साफ करता है। फिर अपनी चप्पल पर पडी हुई धूल को अपराधी की भाति देखता है, और फिर ड्राइग रूम के सुन्दर, मूल्यवान गालीचे पर हल्के-हल्के, उलझे-उलझे क़दमो से आगे बढता चला जाता है। बेला उसे देखकर उठती नहीं है। एलिजा एक कुर्सी लाकर सोफे के सामने रख देती है। वमन भाई उस पर बैठ जाता है]

भाई—(हकलाते हुए) आप बे-बे-बेला बा-बा-बाटलीवाला है ?

जी हा, जी हा, कहिये।

वमन भाई—मुझे ओल्ड प्रेस वालों ने आ-आपसे इन्टरव्यू करने के लिये भे-भजा है।

बेला—मैं हाजिर हूँ।

[बेला घंटी बजाती है। एलिजा आती है।]

बेला—पानी और चाय लाओ।

[एलिजा चली जाती है।]

चमन भाई—अच्छा, तो आपको कशीदाकारी बहुत पसन्द है ? परन्तु मुझे तो बड़े सम्पादक ने बताया था कि आ-आपको सोशलिज्म से बड़ी दिलचस्पी है। मैं इसीलिये आप से इन्टरव्यू करने के लिये उपस्थित हुआ था। परन्तु क-कशीदाकारी का सो-सोशलिज्म से क्या सम्बन्ध है ?

बेला—(चौंक कर बैठ जाती है) नहीं, नहीं, मुझे सोशलिज्म बहुत पसन्द है। मेरा एक चाहे मेरा एक मित्र है, स्वदेश कुमार। वह मुझे सोशलिज्म समझाता रहता है। बड़ा अच्छा लड़का है वह ! उसके पिता की छः मिलें हैं ।

चमनभाई—तो आप सोशलिस्ट हैं ?

[एलिजा अन्दर आ रही है।]

बेला—जी हां, मेरा विश्वास है कि सब मनुष्य बराबर हैं। मैं सब लोगों से बराबरी का व्यवहार करती हूँ। अपनी नौकरानी को अपने साथ टेबल पर खाना खिलाती हूँ। पूछ लीजिये ।

एलिजा—और अपने कुत्ते को मोटर में अपने साथ बिठाती हैं। पूछ लीजिए।

बेला—एलिजा !

देखिये, परसों हमारे बटलर को बुखार हो गया था। इन्होंने डाक्टर को स्वयं अपने हाथ से टेलीफोन किया। पूछ लीजिये।

(चीखते हुए) एलिजा !!

एलिजा—कभी-कभी मैं इनके शीशे का भी प्रयोग कर लेती हूँ—अपना मुँह देखने के लिये। यह सोशलिज्म नहीं तो और क्या है ?

आए, महामारिया आई और डेढ़ सौ वर्ष तक विदेशी शासन के पंजे में हम लोग जकडे रहे। परन्तु इन सारे कष्टों के होते हुए भी हमारी जन-संख्या बराबर बढ़ती रही और सन् १९४७ में हम ४० करोड हो गए।

अब इस महान् परन्तु कष्टप्रद सख्या को समस्या को सुलझाने के लिये सबसे पहले तो हमने अपने कृपालु, दयावान् और सहृदय साम्राज्यवादियो के साथ मिलकर अपने देश का एक भाग अलग कर दिया और एकदम दस करोड़ की सख्या से पीछा छुड़ा लिया। इस चमत्कार का श्रेय हमारे राजनैतिक नेताओं को प्राप्त है। उनकी दूरदर्शिता और तीव्र बुद्धि की कृपा से हम दस करोड़ जनता के बोझ से क्षण भर में ही मुक्त हो गए। यदि देश का विभाजन न होता तो ये दस करोड लोग हमें अब तक भोजन, वस्त्र और रोजगार के लिये अत्यन्त चिन्तित करते रहते। पाकिस्तान के कडे विरोधियों को कम-से-कम यह-बात नहीं भूलनी चाहिये।

स्वतन्त्रता के चौथे वर्ष में हमारे सारे प्रबन्ध सम्पूर्ण हो चुके है। अंग्रेजी में एक किंवदन्ती है कि किसी वस्तु को प्राप्त करने के तीन उपाय हैं—मागो, उधार लो या चोरी करो। हमने जनता से मांग की कि अधिक अन्न पैदा किया जाए। परन्तु इसमें हमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसलिये फिर हमने प्रयत्न किया कि अमरीका से गेहूँ उधार मिल जाए। इससे भी समस्या का समाधान नहीं हुआ। और तीसरा चोरी का था। सो चोरी तो जनता की हम इतनी कर चुके हैं कि अब उनके पास कुछ रहा ही नहीं है जिसकी चोरी की जा सके।

सो फिर क्या किया जाए? एक और उपाय हमारे पास रह गया है और वह यह कि यदि हम अपनी जन-सख्या के अनुसार अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते तो हमें अपने अन्न के अनुसार अपनी जन-सख्या कम कर देनी चाहिये। सामुदायिक हनन का यह मत अर्थ-शास्त्र के प्रकांड पडित और महान् दार्शनिक माल्थस का था।

एक दूसरा दार्शनिक और अर्थ-शास्त्र का पडित भी हुआ है जिसका

का। दो अलग-अलग विजनेस है ।

वमन भाई—वि-विजनेस ? मैं-मैं आपकी बात नहीं समझा ?

एलिज़ा—मैं समझाती हूं। ये विवाह तो एक ब्लैक मार्केटियर से करेंगी और प्रेम एक सोशलिस्ट से।

वमन भाई—(जोर-जोर से हंसता है) भई वाह ! खूब ! फिर जोर-जोर से हंसता है और रुमाल निकाल कर उसे झाडता है जिससे धूल चारों ओर उडती है। फिर रुमाल से मुंह पोंछ कर उसे जेव में रख लेता है। वेला जोर-जोर से खासने लगती है।)

वमन भाई—आपको खासी कब से है ?

वेला—जी ?

वमनभाई—इसकी चिकित्सा कराइये। वहुत बुरा रोग। इससे तपेदिक . ।

वेला—मेरे ख्याल में इन्टरव्यू काफी हो चुका है। आपको अपने समाचार-पत्र के लिए काफी मसाला मिल गया होगा। अब यदि आप ।

वमन भाई—व-वस, एक प्रश्न और। यह भ-भ-भगियो की हडताल के सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है ?

वेला—मैंने ? मैंने तो कुछ नहीं सोचा। मुझे तो यह भी पता नहीं कि भगियो की हडताल हो रही है या होने वाली है। कम से कम मेरी कोठी में तो ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती।

वमन भाई—अजी, हडताल होने वाली नही है, हो रही है। सारे नगर में कूडा-करकट बुरी तरह फैल रहा है। चा-चारो ओर गदगी है और व-वदबू। भगी काम नहीं करते। (घवराकर) और वी-वी-वी ।

वेला—वीवी अमृतकौर ?

वमन भाई—नहीं, नहीं वी-वी-वीमारी फैल रही है जी। का-का-काग्रेस ने अपील की है कि लोग स्वय अपने मोहल्लो में झाडू लगाए। तो आपका क्या ख-ख्याल है ?

देला—एलिजा तुम कमरे से बाहर चली जाओ।

दमन भाई—ब-बड़ी गु-गुस्ताख मालूम होती है।

देला—मैं आज ही इसे यहां से निकाल दूंगी।

दमन भाई—अच्छा, आप क-काम क्या काम करती हैं ?

देला—काम ? हि हि काम तो कुछ नहीं करती।

दमन भाई—आपके पिता क्या काम करते थे ?

देला—कुछ नहीं।

दमन भाई—खैर, आपके दादा क्या काम करते थे ?

देला—वे भी कुछ नहीं करते थे।

दमन भाई—तो आप लोग क-कैसे मेरा मतलब है, कैसे नि-नि-निर्वाह करते हैं ? (दम फूल जाता है।)

देला—निर्वाह ? अरे साहब, हमारी तो सात पुश्तों ने कभी काम नहीं किया। हम तो ऊँचे खानदान के लोग हैं। हम तो दूसरों को काम पर रखते हैं।

दमन भाई—अच्छा, मैं समझ गया। आप कहां तक पढ़ी हैं ?

देला—जी, मैं बम्बई तक पढ़ी हूँ। आगे पैरिस जाने का विचार था। परन्तु पापा की मृत्यु हो गई, इसलिये न जा सकी। अब शादी के बाद जाने का विचार है।

दमन भाई—आपकी शादी अब तक नहीं हुई ?

देला—जी, नहीं।

दमन भाई—आप किससे शादी करेंगी ?

देला—एक आदमी से।

दमन भाई—हैं ! खैर, आप शादी से पहले प्रेम करने के पक्ष में हैं या बाद में ?

[एलिजा चाय लेकर अन्दर आती है।]

देला—न शादी से पहले, न शादी के बाद। वास्तव में प्रेम और शादी दो अलग-अलग बातें हैं। एक शरीर का सौदा है, दूसरा मन

की झाडू हैं।

बेला—झाडू तो हैं, परन्तु भंगी तो नहीं हैं।

चमन भाई—हां, भंगी ह-ह-हडताल पर हैं, यही तो मुसीबत है। कहते हैं हमारी मजदूरी बढ़ाओ। जो कुछ मिलता है उससे निर्वाह नहीं होता।

बेला—यही मेरे नौकर भी कहते हैं। (चीख कर) अरे, इनका वेतन न बढ़ाना। तुम कहोगे तो मैं सारे शहर में झाडू फेरूंगी। तुम कहो तो अपनी सारी सहेलियों को बुला लूं। कहो तो मैं सारे मालाबार हिल के करोडपतियों को एकत्रित कर लूं। हम सब मिलकर झाडू फेरेंगे। परन्तु भंगियों या नौकरों का वेतन कभी नहीं बढ़ाएंगे।

चमन भाई—जय-हिन्द!

बेला—(घंटी बजाकर) एलिजा! एलिजा!!

[एलिजा हाथ पर एक लहंगा और चोली डाले हुए प्रवेश करती है]

बेला—यह क्या है?

एलिजा—सरकार! आपकी आवाज बाहर तक आ रही थी। मैंने सुन लिया और मैं अपनी भंगिन से यह लहंगा, चोली, झाडू और टोकरी ले आई। सरकार ये कपड़े पहनिये, और यह टोकरी लेकर इस झाडू से सफाई कीजिये।

[एलिजा टोकरी फर्श पर रखती है। उसमें से एक नन्हा बच्चा उठ बैठता है।]

बेला—(चकित-सी होकर) और क्या है यह?

एलिजा—यह भंगिन का बच्चा है सरकार! इसे न केवल यह गन्दा लहंगा और फटी हुई चोली पहनकर और सिर पर टोकरी रखकर कूडा ढोना पड़ता है, वरन् साथ-ही-साथ इस नन्हे-से बच्चे को भी गोद में सम्हालना पड़ता है।

तीस करोड भारतीयो को तनिक ध्यान में लाइये जिनमें से प्रत्येक के सिर पर ३६ वर्ग इच का खेत होगा। कुल मिलाकर यह क्षेत्रफल इगलैंड के बराबर होगा। इन खेतो पर हम गेहूँ, दालें, चावल, गन्ना, आदि बो सकते है। यहाँ हम साग-भाजियों की छोटी-छोटी क्यारिया भी लगा सकते हैं जिनमें गोभी, बेंगन, शलजम, भिंडी, आलू आदि उगाए जा सकते है। और मजे की बात यह है कि यह सब कुछ हमारे सिरों पर उग सकेगा—कारमैन मिराडा की भाति।

मेरे इस प्रतिभाशाली मित्र ने कहा कि "वास्तव में मैंने यह विचार कारमैन मिराडा से ही प्राप्त किया है—मिराडा जो हॉलीवुड की विख्यात सिनेमा-अभिनेत्री है।" मैंने उत्तर दिया, "यह बहुत अच्छी बात है। यदि हमें अमरीकन गेहूँ नहीं मिल सकता तो हमें अमरीकी विचार तो उपलब्ध हो सकते है। इसमें बुराई ही क्या है। तो आओ हम पहले मिनिस्टरों का आशीर्वाद ले लें और इस आन्दोलन का श्रीगणेश कर दें। हमारी पवित्र स्वतन्त्रता तथा 'पब्लिक सेफटी ऐक्ट' के कारण भारत में किसी भी योजना एव आन्दोलन को तब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि उसे राज्य के मंत्रियों का आशीर्वाद प्राप्त न हो जाए।"

परन्तु मेरे मित्र ने निराशापूर्वक सिर हिलाते हुए कहा "इसमें एक है। मुझे डर है कि हमारे मंत्री इस विचार एव योजना से सहमत होंगे। क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि कोई मत्री अपनी टोपी टमाटर, प्याज, पटसन या कपास उगाना पसन्द करेगा?"

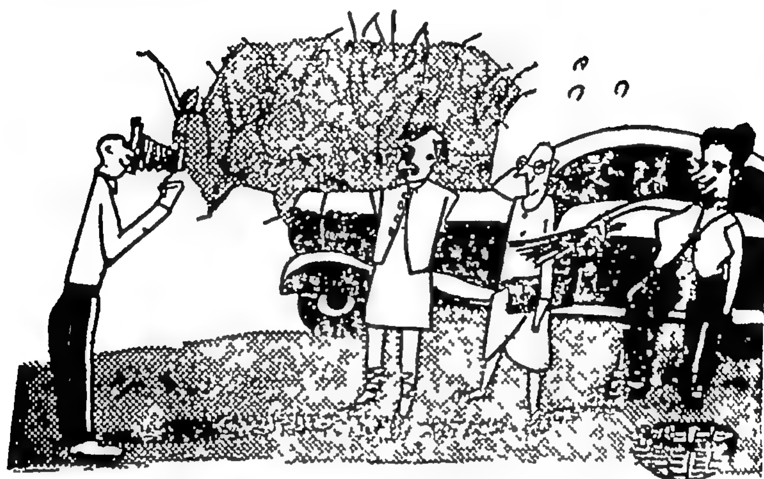
"नहीं!" मैंने उत्तर दिया। और हमने इस योजना को त्याग दिया।

अकाल उगाओ' योजना के सम्बन्ध में मै जितना अधिक सोचता हूँ, यह योजना उतनी ही अधिक उचित और उत्तम लगती है। यदि हम जमींदारो, जागीरदारों, चोर-बाजारी करने वालो, और साम्राज्य-वादियो को समाप्त नहीं कर सकते तो आओ हम अकाल के द्वारा जनता को समाप्त कर डालें। यदि हम कुछ अकाल ऐसे उत्पन्न कर सकें जैसा

बेला—ओह, खूब ! तो चलिये।

खद्दरधारी—यह झाड़ू आपके अर्पण है।

बेला—(झाड़ू हाथ में लेकर) धन्यवाद !



खद्दरधारी—(कैमरे वाले से) अरे भई, मिस साहब का एक फोटो ले लो। और देखो, उद्घाटन के समय अच्छी तरह फोटो लेना।

फोटो वाला—बहुत अच्छा साहब ! (कैमरा ठीक करता है) मिस साहब, तनिक मुस्कुराइये हो गया।

चमन भाई—(कैमरा वाले को अलग ले जाकर) देखो भाई, उद्घाटन के समय मेरा अच्छा-सा फोटो लेना।

[कोठी के बाहर इकट्ठे हुए दर्शकों, आने-जाने और किराए के टट्टुओं की आवाजें आ रही हैं, और तालियाँ व सीटियाँ बज रही हैं।]

खद्दरधारी—मिस बेला बाटली वाला ! तशरीफ ले चलिये। जनता बड़ी बेचैनी से आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

बेला—एलिजा, मेरा यह लिबास जरा ठीक करदे।

[एलिज़ा बेला के वस्त्र ठीक-ठाक करती है। और बेला के पीछे

बेला—ले जा इन सब चीज़ों को बाहर और वापस दे आ भगिन को। मैं एक नया गाउन पहन कर और खस की झाड़ू लेकर सड़क पर झाड़ू फेरूँगी।

दमन—यह हुई न बात। मैं अभी कांग्रेस वालों से कह-सुनकर ग-ग-गवर्नर साहब को टेलीफोन करता हूँ।

बेला—गवर्नर साहब ?

दमन भाई—हां, हां, आप झाड़ू फेरेंगी और वे इस उत्सव का उद्घाटन करेंगे।

[दमन टेलीफोन करता है।]

[पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[उसी दिन शाम के समय बेला सुन्दर वस्त्र पहने अपनी नई गाडी का सहारा लिए खडी है। उसने अपने बाल एक नये ढंग से बनाए हैं। उसके पास ही दमन भाई और एलिजा खडे हैं और एक अधेड़ अवस्था का व्यक्ति खद्दर के कपड़े और काली वास्कट पहने मुँह में लम्बा-सा चुरट लगाए खडा है। उसके निकट एक आदमी फटी सी पतलून और कमीज पहने कन्धे पर कैमरा लटकाए खडा है।]

दमन—(बेला को खद्दरधारी से मिलाते हुए) गवर्नर साहब तो कार्य-वश नहीं आ सके। फिर मैंने इनसे प्रार्थना की थी। आप हैं श्री जी० एल० गुड्गुडी साहब, देश के विख्यात नेता। आप सात बार जेल-यात्रा कर चुके हैं।

बेला—आप जेल जा चुके हैं। How lovely ! आपको जेल में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?

खद्दरधारी—जी नहीं, मुझे तो वहां घर से अधिक आराम था।

दमन भाई—आ-आप आज के शुभ अवसर का उद्घाटन करेंगे।

है। खद्दरधारी चुरट पीते-पीते यहाँ तक पहुँचता है और कहता है—]

खद्दरधारी—प्यारे भारत-निवासियो ! आज हमारे देश में घोर संकट का समय है। भंगियों ने हड़ताल कर दी है और शहर में कूड़े-करकट के ढेर लग गए हैं। यदि इस समय इस संकट को दूर करने का उपाय न किया गया तो भारत देश में हाहाकार मच जाएगा और कम्युनिस्ट इस देश में उपद्रव मचा देंगे। भाइयो और बहनो ! इस कठिन अवसर पर कांग्रेस आपको सन्देश देती है कि बापू का नाम लेकर झाड़ू हाथ में लो और सारे शहर में भंगियों की हड़ताल तोड़ दो। यह देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है कि मिस बेला बाटलीवाला जैसी सुन्दर बाला और उच्च करोड़पति घराने की महिला इस काम में हाथ बँटा रही हैं। ये करोड़पति लोग भी हमारे भाई हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ये सब भाई हमारे साथ थे। और आज जब इस देश में झाड़ू फेरने का प्रश्न है तो भी ये लोग हमारे साथ हैं। और हम ऐसे कृतघ्न नहीं हैं कि इनका फिर भी साथ न दें, इनका सम्मान सहित आदर न करें। इसलिए सब बोलो, मिस बाटलीवाला की जय !

दर्शक—मिस बाटलीवाला की जय !

एक आवाज—ठहरो, ठहरो।

[फटा-पुराना लहंगा और फटी हुई चोली पहने एक काली-कलूटी भंगिन कोठी के अन्दर से भागी हुई चली आ रही है। उसकी गोद में एक बहुत ही दुबला-पतला मरियल-सा बच्चा है। भंगिन आते ही बेला के पांव पर गिर पड़ती है।]

भंगिन—मालकिन ! तुम यह काम न करो।

बेला—परे हट जा। (उसे ठोकर लगाती है। भंगिन उठ खड़ी होती है।)

मेंढ़क की गिरफ़्तारी ४.

बहुत दिनों के बाद झील के किनारे आज फिर वसन्तका आनन्द छाया। किनारे से देखने वाले व्यक्ति को यही प्रतीत होता था कि बहुत से मेंढक झील के किनारे बैठे हुए टर्रा रहे हैं, परन्तु वास्तविक बात यह नहीं थी। वास्तविक बात यह थी कि आज बड़ा मेंढ़क बड़े महल से छूटकर आया था, इसलिये उसकी धर्मपत्नी पुखराज और तीन बेटों—टम्पू, जम्पू और भौंपू—ने झील के किनारे सारे मेंढकों को सहभोज के लिये आमन्त्रित किया था। इस दावत में सम्मिलित होने के लिये दूर-दूर से मेंढक आए थे और उछल-उछलकर बड़े मेंढक से, जिसका नाम बसन्तरूप था, गले मिल रहे थे। पुखराज ने बड़ी झाडी की एक शाखा से जुगनुओं की एक लालटैन लटका रखी थी, जिसकी ठंडी रोशनी में उसका पीला-पीला चेहरा आनन्द-विभोर होकर जगमग-जगमग कर रहा था।

सहभोज के पश्चात् सारे मेंढ़क आलती-पालती मारकर गोल दायरे में बसन्तरूप के चारों ओर बैठ गए और उससे बड़े महल की बातें पूछने लगे, क्योंकि अब तक कोई मेंढक उस बड़े महल के अन्दर, जो झील के दूसरी किनारे पर स्थित है, नहीं जा सका था। महल के बाग तक तो बहुत से मेंढक हो आए थे और महल की सगमरमर की सीढ़ियों तक पाँव रख चुके थे, परन्तु अन्दर जाने का साहस अब तक किसी मेंढक में नहीं हो पाया था। बसन्तरूप पहला मेंढक था जो महल के अन्दर जाकर वापस आगया था। इसलिये सारे मेंढक यह जानने के लिये अत्यन्त

बेला—हाय मेरा फ्रासीसी गाउन...मगर यह फोटो न लो। अरे, यह कैमरे में क्या करता है ?

[कैमरे वाला हँसता है।]



भगिन—क्या कहती है ? अब भी झाड़ू देगी ?

बेला—निकल जा, निकल जा अभी मेरी कोठी से।

भगिन—(सर पर झाड़ू मारकर) चली है हडताल तोडने। कलेजा चीरकर रख दूंगी जो फिर कभी झाड़ू हाथ में लिया तो।

भीड में से आवाजें—भगिन जिन्दाबाद !

एक खद्दर की टोपी वाला—अरे जिन्दाबाद नहीं मुर्दाबाद कहो, नहीं तो मैं पैसे नहीं दूंगा।

भीड में से आवाजें—अरे कौन तेरे पैसे लेता है ? धर रख अपने पैसे। साला हडताल-तोड, काला-चोर !

[दर्शक आवाजें लगाते हैं—'काला चोर मुर्दाबाद', 'काला चोर मुर्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद'। भगिन चारों ओर झाड़ू फेर रही है। कैमरे वाला हसते-हंसते फोटो ले रहा है। लोग चीख रहे हैं। खद्दरधारी और बमन भाई का बुरा हाल है। बेला वहां से पोर्च की ओर भागती है।]

स्वराज्य के पचास वर्ष बाद

६.

(सन् २०१० में एक हिन्दुस्तानी नौजवान, जिसके पूर्वज स्वराज्य से बहुत पहले ब्राज़ील में जाकर बस गए थे, अपने देश वापस आया। डेढ दो साल यहाँ रहकर वह ब्राज़ील लौट गया। वहाँ जाकर उसने एक किताब लिखी—"स्वराज्य के पचास वर्ष बाद।" इस किताब का अनुवाद दुनिया की सब भाषाओं मे हो गया है परन्तु भारत में उसके प्रकाशन पर प्रतिबन्ध है। यह लेख उसी किताब से लिया गया है।)

जब हमारा जहाज़ पटेलपुर, जिसे अग्रेजो के शासन काल में बम्बई कहते थे, के बन्दरगाह में पहुँचा तो मेरे दिल में खुशी और उमगो का एक तूफान उमड आया। अपने प्यारे देश की झलक देखते ही मेरी आत्मा भावनाओं के आवेश से विकम्पित हो उठी और देश-प्रेम की भावना से मेरी आखो में आसू आ गए। समुद्र तट पर सगमरमर का बना हुआ एक भव्य द्वार था जिसके ऊपर दस झडे लहरा रहे थे—तिरंगा झडा, केसरी झडा, सफेद झडा, हरा झडा आदि आदि। गरज यह कि हर रग के झडे थे और ये सब राष्ट्रीय झडे माने जाते थे। परन्तु एक काले झडे को देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि ब्राजील और अन्य देशो में काला झडा शोक का चिन्ह समझा जाता है। परन्तु मुझे बताया गया कि यह उन शहीदों का झडा है जिन्होने देश के लिए भूख हडताल करते हुए अपने प्राण दिए। एक और झडा भी था जिस पर कमल का फूल बना हुआ था। यह बगालियो का झडा था। बात यह है कि स्वराज्य मिलने के बाद ही भारत की संसद में राष्ट्रभाषा

से कहा, "श्रो हरिये ! मैं जानता हूँ तुझे मेरी बातें श्रच्छी नहीं लगेंगी, क्योंकि मैं फिर जीवित-जाग्रत श्रवस्था में झील के किनारे वापस श्रा गया हूँ।"

पुखराज ने जुगनू की लालटैन जोर से हिलाई श्रौर जुगनू चमचम करके चमकने लगे। पुखराज ने श्रपना सुन्दर मुख श्रपने पति की श्रोर घुमाकर कहा, "प्यारे ! बहुत से बडे-बडे मेंढक तुम्हारी बातें सुनने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। तुम इस कम्बख्त हरिये की परवाह न करो श्रौर श्रानन्दपूर्वक श्रपनी कहानी सुनाश्रो।"

पुखराज की बात सुनकर हरितरूप श्रपने गले में टर्राकर रह गया। उसके गले से एक ऐसी श्राह निकली जो ताल श्रौर स्वर के हिसाब से उस्ताद फैयाज खाँ के घराने से सम्बन्ध रखती थी। परन्तु फिर उसने उस श्राह को श्रपने हृदय में ही दबा लिया श्रौर श्राँखें नीची करके बैठ गया।

वसन्तरूप ने बात की शृंखला को दोबारा जोडते हुए कहा, "तो मैं कह रहा था कि मैं महल की सीढियों पर लेटा हुश्रा धूप सेंक रहा था श्रौर श्रर्ध-जाग्रत, श्रर्ध-स्वप्न श्रवस्था में था कि इतने में मुझे ऐसा लगा मानो किसी ने मुझे श्रपनी मुट्ठी में दबोच लिया हो। मैंने श्रपनी श्रर्ध- [illegible] श्राँखें खोलीं तो श्रपने श्रापको महल के राजा के सबसे छोटे [illegible] की मुट्ठी में पाया। मैं ज्यों-ज्यों श्रपने-श्रापको उसकी मुट्ठी से [illegible] का प्रयत्न करता, वह दुष्ट लडका जोर-जोर से हँसता। उसकी [illegible] उस समय मुझे बडी भयानक श्रौर निर्दयतापूर्ण लग रही थी। श्रौर [illegible] उसने श्रपनी अगुलियाँ मेरी पसलियो में खुबो दीं तो मैं एकदम ढीला [illegible] गया। फिर वह श्रपनी मुट्ठी में ही मुझे महल के श्रन्दर ले गया। [illegible] मेरे शरीर को पूरे बल के साथ पकड रखा था, परन्तु मेरा मुंह उसकी मुट्ठी से वाहर था, इसलिये मैं महल के चौक, बरामदे, खम्बे, बडे-बडे विशाल कमरे श्रौर उनके श्रन्दर रखा हुश्रा सामान बडी श्रच्छी तरह देख सकता था। प्रत्येक कमरे में सुन्दर गालीचे बिछे हुए थे।"

दवात और बही रखे एक चटाई पर बैठा था। मैंने अपना टोप उतार कर उसे सलाम किया। उसने कुछ देर तक मुझे घूरकर देखा, फिर बोला—

"तुम कहा से आए हो ?"

"ब्राज़ील से।"

"तुम्हारा पार-पत्र ?"

"पार-पत्र ?"

"हां, हां पार-पत्र, पासपोर्ट ?"

"ओह, यह रहा।"

"हूं, तुम भारतीय हो ?"

"जी हा" मैंने गर्व से उत्तर दिया।

"तुम यहा कितने समय तक ठहरना चाहते हो ?"

कितना अजीब सवाल था। मैंने कहा—

"मैं भारतीय हूं, और यहा ठहरने का मुझे पूरा-पूरा अधिकार है, चाहे छ: महीने रहूं, चाहे सारी उम्र यहीं बिताऊं।"

"नहीं . यह बात नहीं है। तुमने और तुम्हारे माता-पिता ने सारी उम्र भारत से बाहर बिताई है। तुम भारतीय सभ्यता और संस्कृति से अनभिज्ञ हो। इसलिए तुम यहा केवल छ महीने रह सकते हो।" उसने पासपोर्ट पर दस्तखत करते हुए कहा—"इससे अधिक ठहरने के लिए तुमको पटेलपुर के सर्वोच्च अधिकारी से प्रार्थना करनी होगी।"

मैंने विरोध प्रकट किया—"मैं भारतीय हूं, यहा ठहरना मेरा जन्म-अधिकार है।"

उसने मुस्कराकर कहा—"हर भारतीय, भारतीय नहीं होता। तुम चर्खा चलाना जानते हो ?"

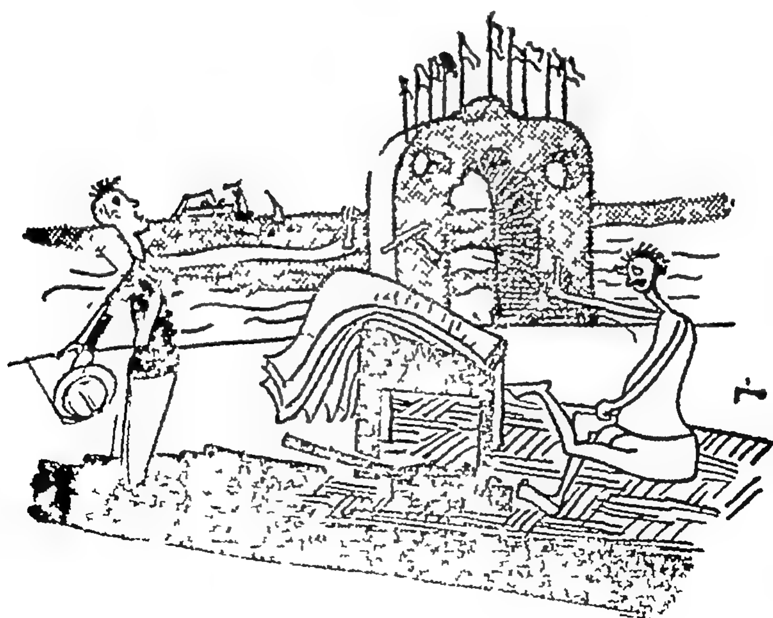
"नहीं।"

"तकली फिराना ?"

"नहीं।"

और राष्ट्रीय झंडे के सवालों पर एक बड़ा विवाद छिड़ गया और सम्भव था कि यह विवाद बढ़कर गृह-युद्ध का रूप धारण कर लेता। परन्तु हमारे मान्य नेताओं ने आपसी समझौते से इस समस्या का हल निकाल लिया। इसलिए उस समय से आज तक हरएक भारतीय को इस बात अधिकार प्राप्त है कि वह अपना राष्ट्रीय झंडा अपनी मर्जी से चुने और जो भाषा चाहे, बोले और लिखे।

इसका एक परिणाम यह भी निकला था कि कई लोग अदालत में एक कागज के टुकड़े पर आड़ी-तिरछी लकीरें खींच कर ले जाते ? और जज को इस नई भाषा और लिपि पर गौर करना पड़ता था। परन्तु जैसा मैं आगे चलकर बताऊँगा, ये सब अन्तरिम काल की बातें थीं और इनका देश की शासन व्यवस्था और संस्कृति पर कोई असर न पड़ा।



नगमरनर के उस द्वार के बाहर एक आदमी अपने सामने

"शराब पीते हो ?"

"हां, ब्राजील में तो आम चलन है। इसके बिना खाना हजम नहीं होता।"

"हां खूब याद आया।" उसने कहा, "तुम खाना मेज पर बैठकर खाते हो, या धरती पर ?"

"मेज पर बैठकर, छुरी कांटे से।"

"हूं छुरी कांटो से।" उसने वही में लिखते हुए कहा – "अच्छा अब अपना सामान दिखाओ।"

थोडा-सा सामान था। उसने कुछ मिनटों में देख लिया। एक सूट केस के कोने में उसे कुछ छुरिया-काटे मिल गए। उसने इन्हें उठा कर समुद्र में फेंक दिया—"ये अहिंसा के कानून की लपेट में आते हैं। अब तुम जा सकते हो।"

× × ×

जिस हिन्दुस्तान का जिक्र मेरे दादा मुझे सुनाया करते थे, वह तो दुनिया के पर्दे से मिट ही गया था। अब तो उसकी जगह 'भारत' था। मेरे दादा को, जो साम्यवादी थे और स्वराज्य मिलने से बहुत पहले देश से निकाल दिए गए थे, अपने देश को आजाद देखने की लालसा आखरी दम तक सताती रही थी। लेकिन मेरे पिता को शुरू से ही राजनीति से अरुचि थी। उन्हें राजनीति के बजाए खेती-बाडी से ज्यादा दिलचस्पी थी। इसलिये उन्होंने भारत जाने की कभी न सोची। मुझे भारत जाने का इच्छुक पाकर बोले "अच्छा भई जाओ। अपने देश के दर्शन कर आओ। परन्तु मैंने सुना है कि अब देश बहुत चुका है। वहां तुम अपने को अजनबी महसूस करोगे।"

अजनबी—मैं हैरान हूं कि देश की मौजूदा हालत का कैसे विश्लेषण करूं ? यह इतना अजीब और अनोखा देश है कि मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या यह वही हिन्दुस्तान है जिसके बारे में मेरे दादा इतनी अच्छी-अच्छी बातें सुनाया करते थे और जिसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में

और इधर-उधर दौडने लगीं। हा हा हा ! ये लोग हमारी जाति से कितने डरते हैं।"

बहुत से मेंढक हँसने लगे। भूरा ने सिर उठाकर कहा, "मैं जानता हूँ मनुष्य ऊपर से बहादुर बनता है परन्तु अन्दर से बडा कमजोर होता है। और पानी में तो उसके प्राण ही निकलने को हो जाते हैं। अरे, यह क्या खाकर मेंढक का मुकाबला करेगा !'"

बसन्तरूप ने फिर बात की शृंखला को जोडते हुए कहा, "उसके बाद जो हुडदंग मची उसका तो वर्णन हो ही नहीं सकता। बीस-तीस आदमी मेरे आगे-पीछे दौड रहे थे, परन्तु मैं किसी के वश में न आता था। राजा हिम्मतसिंह के मुँह से क्रोध के मारे झाग उठ रही थी। अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे चिल्ला रहे थे—'अरे छोडना नहीं, देखना जाने न पाए।' अब मैंने छलाँग लगाई और राजा साहब के सिर पर सवार हो गया। फिर क्या था ! राजा साहब वहाँ से उठकर भागे। मैंने वहाँ से फिर छलांग लगाई और एक दूसरे कमरे में पहुँच गया। अब राजा साहब के छोटे लडके ने अन्दर से द्वार बन्द कर दिया और मुझे पकड लिया। परन्तु मैंने भी बच्चा जी को बहुत परेशान किया। ऐसे थोडे ही वश में आने वाला था मैं ?"

"शाबाश ! शाबाश !" बहुत से मेंढक एकदम चिल्लाए।

पुखराज गर्व से अपने पति की ओर देखने लगी।

"फिर क्या हुआ ?" भूरा ने पूछा।

"फिर मुझे उस दुष्ट लड़के ने एक टोकरी में बन्द कर दिया। जिसमें मैं कुदक-फुदककर रह गया। टोकरी बहुत मजबूत थी और यद्यपि उसमें सूराख थे, परन्तु वे इतने बडे नहीं थे कि मैं उनमें से बाहर निकल सकूँ।"

"तुम उसमें कितने दिन बन्दी रहे ?" दादा ने पूछा।

"दस दिन और दस रातें। परन्तु रातें बहुत व्याकुल करती थीं। जब लडका अपने कमरे की खिडकी खोल देता था तो झील से आप

उसने डरते-डरते मुझे सारा हाल यूं सुनाया।—

"बात यह है कि भारत के आजाद हो जाने के बाद जनता को महात्मा के चमत्कार में और उसके अवतार होने का पूरा-पूरा विश्वास हो गया। वे विश्वास करने लगे कि यह परमात्मा का भेजा हुआ महात्मा है, जिसकी बात टालना महापाप है। महात्मा के बाद उसके चेलों ने जिन्हें हम सरदार कहते हैं, इस मत को बहुत फैलाया। और अब तो रासराजेन्द्र से परशोत्तम पर्वत तक, हर आदमी इसी धर्म का पुजारी है। अब इस भारत में न कोई हिन्दू है न मुसलमान, न सिक्ख न ईसाई, न जैनी और न बौद्ध। अब तो हर आदमी अपने को महात्मा का भक्त कहलवाता है।"

शायद इसी कारण मैंने भारत में मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारे केवल कहीं-कहीं देखे। आह! यदि आज मेरे दादा जीवित होते तो इस दृश्य को देखकर कितने प्रसन्न होते। हाँ, एक बात अवश्य है कि गांवों में और शहरों में जगह-जगह पर मन्दिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों के बजाय शानदार इमारतें बनी हुई हैं। इन्हें 'चर्खा-गृह' कहा जाता है। इनमें सुबह-शाम भक्तों का एक जमघटा-सा लगा रहता है। चर्खा-गृह के ठीक बीच में सोने-चांदी या किसी बहुमूल्य लकड़ी का बना हुआ एक चर्खा स्थापित होता है, जिसे लोग आकर बारी-बारी से चलाते हैं और पुण्य कमाकर लौट जाते हैं। आस्था रखने वाले चर्खा-गृहों में जाकर प्रार्थनाएँ करते हैं, चढ़ावे चढ़ाते हैं। चर्खे के महापुजारी गंडे और तावीज भी बेचते हैं और यह व्यापार बड़ी उन्नति पर है। जैसे ईसाई औरतें



महीना पीने के बाद लड़ाई करने को जी ही नही चाहता, हा आत्म-हत्या करने को अवश्य मन करता है। शायद इसी कारण भारत में



आत्महत्या करने वालों की संख्या पहले से तीन गुनी हो गई है। किसान धान की खेती नहीं करते, बल्कि बकरियाँ पालते हैं और बकरियो पर ही नेताओं के जलूस निकालते है। घनी आबादी वाले प्रदेश वे हैं, जहाँ खजूर बहुत होते हैं, जैसे राजपूताना। काश्मीर और उसके आस-पास के प्रदेशों में जहां न सतरे होते हैं न खजूर, अब केवल कुछ जगली आदिवासी बसते हैं, जो फाके करते हैं या खट्टे सेब, आलूचे खाकर दिन काटते हैं। लेकिन इनका भारत में प्रवेश मना है।

हर सोमवार को यहाँ 'मौन दिवस' मनाया जाता है। उस दिन समस्त भारत मौन रहता है। कोई किसी से बात नहीं करता। इशारो से एक-दूसरे को अपनी बात समझाते हैं या कागज-पेंसिल की सहायता से काम चलाते हैं। घर के पालतू जानवरो, जैसे कुत्ते, बिल्ली, तोता, मैना, घोड़े, गधे, बैल, बकरी आदि का मुँह किसी कपड़े से बांध दिया जाता है जिससे शाति में विघ्न न पड़ें और मौन व्रत भग न हो।

भारत के अपने दौरे में मैंने यह महसूस किया कि भारतीयो का अहिंसा के मत में अटल विश्वास है। यह सुन्दर मत उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। परन्तु मुझे हैरानी तो इस बात से हुई कि किस प्रकार बाहर से देखने पर इस बोदे मत ने भारत की जटिलतम समस्याओं को सुलझा कर रख दिया है। जब मैंने अपने दादा के बूढे

बड़े गन्दे होते हैं। जब वे एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो एक-दूसरे के होंठ चूमते हैं।"

"हाय हाय! कितनी गन्दी, असभ्य, वहशी रस्म है!" यह कहकर ज़रीफा ने घृणा से थूक दिया। उसे सचमुच मनुष्य-जाति से घिन आने लगी थी।

"और उस पर तुर्रा यह कि ये मेंढक को भोंडा और असभ्य समझते हैं।" वसन्तरूप ने घायल गर्व के साथ कहा, "और स्वय उनका यह हाल है कि उन्हें सभ्यता छू तक नहीं गई। आकृति देखो तो ऊबड़-खाबड़। पुरुषो के तो सारे शरीर पर बाल उगे रहते हैं और मुख पर मूंछ और दाढ़ी होती हैं। और स्त्रिया अपने सिरो पर बहुत लम्बे लम्बे बालो का झुंड-सा उगाती हैं।"

यह सुनकर ज़रीफा और शरीफा दोनो चीख पड़ीं और कहने लगीं, "अरे, ये पशु हमारी झील पर आ जाए तो हम तो कभी इन्हें अपने मुंह न लगाए।"

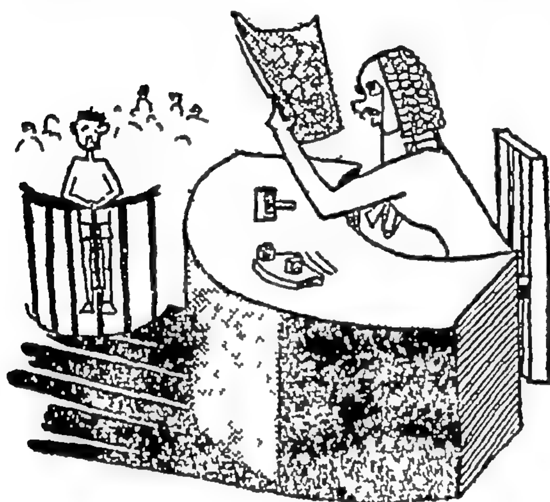
"नि सन्देह!" हरितरूप ने गम्भीरता से कहा, "हमारी जाति की स्त्रिया अत्यन्त सुन्दर हैं। ससार की कोई जाति सुन्दरता और शूरवीरता में हमारा मुकाबला नहीं कर सकती।"

उसके बाद कुछ क्षणो तक पूर्ण निस्तब्धता छाई रही। ज़रीफा, शरीफ़ा, नीलिमा, पुखराज आदि मेंढकिया झील के पानी में अपना प्रति-
देख-देखकर आनन्द-विभोर होती रहीं।

फिर बसन्तरूप बोला, "अब चूंकि मनुष्य जाति की मेंढकियों के
में बातचीत हो रही है, इसलिए इस सम्बन्ध में दो और बातें
में उनका वर्णन पूरा कर देना चाहता हूं। एक तो यह कि राजा
महल में मैंने उनकी मेंढकियों को बहुधा बेवफा पाया—मेंढकियो को भी और उनके मेंढको को भी। ये लोग ऊपर से प्रेम जताते हैं परन्तु अन्दर से किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करते हैं। अब राजा हिम्मत सिंह को ही ले लो। उसको सात मेंढकिया हैं।"

का आरोप नहीं लगाया जा सकता।"

भारत ने अपनी सुरक्षा के लिए सेना और पुलिस को रखना आवश्यक नहीं समझा। और सच तो यह है कि देश की इन परिस्थितियों में ये दोनों विभाग अनावश्यक ही मालूम होते हैं। यहां मैंने किसी को लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। जज और वकील सारा दिन बेकार बैठे रहते हैं और तकली फिराते रहते हैं। कभी कोई दंगा फसाद नहीं होता। लोग एक-दूसरे से मिलते समय हाथ जोड़ लेते हैं और मुस्कराते हैं। अगर किसी से नाराजगी हो जाए तो उसे कुछ नहीं कहते, बल्कि आप ही भूखा रह कर प्रायश्चित कर लेते हैं। देश में कपड़े के कारखाने कभी के बन्द हो गए हैं और हाथ का बुना कपड़ा सारे देश के लोगों के लिए काफी नहीं होता। इसलिए करोड़ों लोग अर्धनग्न फिरते हैं। लोग ऐश आराम, भोग-विलास को तनिक पसन्द नहीं करते। इन लोगों ने अपने घरों से फर्नीचर आदि निकाल कर कभी के जला डाले हैं। ये लोग धरती पर सोते हैं, सदा सच बोलते हैं और दिन-रात परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं। बाजारों में बकरियां मिमियाती फिरती हैं और अपने मालिकों के लिए सौदा-सुलक गले में बंधवा कर ले जाती हैं।



स्त्रियों के आदर-सत्कार के सम्बन्ध में भारतीय सारी दुनिया से

पर दूसरे देश हमला नहीं करते, यद्यपि भारत के पास न फौज है न हथियार। शायद इसका कारण यह है कि दूसरे देशों के लड़ाकू लोग इस प्रतीक्षा में हैं कि ये भारतीय, अपने ब्रह्मचर्य व्रत के हाथो इस दुनिया से बैकुण्ठ सिधार जाएँ और तब वे इस सूने देश में आकर बस जाएँगे। जो चीज़ थोड़ी प्रतीक्षा से प्राप्त हो सकती है और बिना लड़े-झगड़े मिल सकती है, उसके लिए क्यो खून बहाएँ ?

दो साल से कम ही समय तक घूम कर, मैं ब्राजील लौट आया। मेरा जी अपने उस प्यारे देश से बहुत जल्द भर गया, जहां कोई किसी से प्रेम नहीं करता, जहां लड़ाई-झगड़े नहीं होते, जहां सब सच बोलते हैं, बकरी का दूध पीते हैं और लगोट बान्ध कर ईश्वर-भजन करते हैं।

राजा की एक लड़की को महल के सुन्दर तालाब में एक लड़के को छेड़ते हुए देखा था।"

"छि: छि.!" पुखराज अपनी गोल-गोल आखो को घुमाते हुए बोली, "यह तो नितान्त निर्लज्जता है।"

"इसका तो स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उन लोगों को सभ्यता छू तक नहीं गई।" कालेकर बोला।

कालेकर जिस मेंढक का नाम था वह झील का सबसे विद्वान् था। मेंढकों की भाषा पर जितना अधिक उसे अधिकार था, उतना अन्य किसी मेंढक को नहीं था। वह प्रत्येक प्रकार की टर्राहट और उसकी बारीक स्वर-लहरी से परिचित था। मेंढक-बालकों को वही टर्राना सिखाता था। वह उन्हें सिखाता था कि हर्ष के समय कौन-सी टर्रावली प्रयुक्त करनी चाहिये और शोक के समय कौन-सी। अपने मा-बाप से किस तरह बात करनी चाहिये। मेंढकों के लिए प्रेम की शब्दावली क्या होती है वह उसे भलीभाति जानता था। उसने पूछा, "भाई बसन्तरूप! मनुष्य की भाषा के सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो?"

"मान्यवर!" बसन्तरूप ने उदासी से सिर झुकाकर उत्तर दिया, "मनुष्य की दो भाषाए होती हैं।"

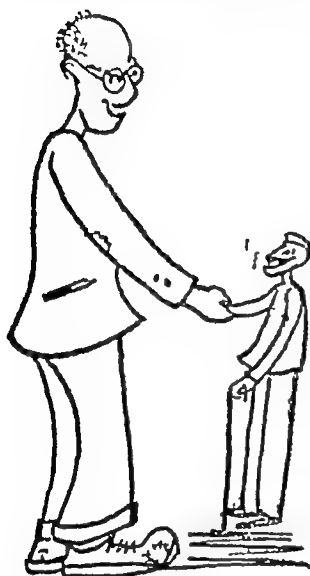
"दो भाषाए!" कालेकर ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"यह असम्भव है। ससार में प्रत्येक जाति की एक ही भाषा होती है—केवल एक भाषा।"

"परन्तु मनुष्य की दो भाषाए होती हैं—एक तो वह जिसे वे बोलते हैं और दूसरी वह जिसे वे मन में रखते हैं। वे शब्द जो उनके मन में होते हैं, प्राय: जिह्वा पर नहीं आते और जो शब्द वे जिह्वा से बोलते हैं, समझ लीजिये कि वे उनके मन की वास्तविक भावना के विरुद्ध हैं।"

"वह कैसे? मैं समझा नहीं भाई।"

"मान्यवर!" बसन्तरूप ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा, "छोटे

है। वे सब यह समझते हैं कि मैं कम से कम ढाई सौ रुपए अवश्य कमाता हूँ। ये इसका उल्लेख वडी ईर्ष्या पूर्वक करते हैं, जिसे सुनकर जी तो जल ही जाता है परन्तु एक प्रकार के उल्लास का भी अनुभव होता है। वाजार में चलते-चलते कोई पुराना मित्र मिल जाए, वडे स्नेह



पूर्वक गले मिले और इसके पश्चात्, "यार सुना है कि तुम प्रोफेसर हो गए हो। (सुना है, जैसे विश्वास नहीं आता) यार सुनकर वहुत प्रसन्नता हुई। (प्रोफेसर मैं हुआ, प्रसन्नता आपको हुई) यार खूब ऐश करते हो ना। (खुदा तुम्हे गारत करे) ढाई सौ रुपए पाते हो। तनिक मेरी ओर देखो, खडड-वडड कम्पनी में पंतीस रुपए पाता हूँ, एक वीवी है, वच्चे हैं, जान आफत में है। तुम तो ऐश करते हो—दो-ढाई स रुपए महीना।'

कहना यह कि यार लोग ढाई सौ रुपयों का उल्लेख इस शुभ कामना और विश्वास से करते हैं कि वहुधा मुझे भी भ्रम-सा हो जाता है कि वास्तव में मेरा वेतन इतना ही है। परन्तु जव महीने की पहली तारीख आती है तो यह सुन्दर भ्रम, टुकडे-टुकडे हो जाता है।

कुछ लोगो ने मेरी शिक्षा सम्वधी योग्यता के वारे में विभिन्न दृष्टिकोण अपना रखे हैं और मेरी हज़ार कोशिशो पर भी इन दृष्टि-कोणों को त्यागने के लिए तैयार नहीं। गांव वाले तो विशेष रूप से यह विश्वास कर वैठे हैं कि ससार भर के ज्ञान-विज्ञान का मैं ज्ञाता हूँ। यदि किसी को आपरेशन कराना हो, किसी का मुकदमा हो, किसी की पत्नी भाग गई हो, वह तुरन्त लाहौर आकर मुझ से परामर्श करता है

दे रहा हूं जुगराफिया का पर्चा बहुत बुरा हुआ है। पास होने की कतई उम्मीद नहीं है। आप खान बहादुर रिच को तो जानते होंगे। अगर उनसे मिल-मिला कर काम हो जाए तो ?"

मैंने मन में सोचा, 'कहां मैं और कहां खान बहादुर रिच। सिफारिश करना तो दूर, मैंने उन्हें देखा भी नहीं।' मगर जैसा मैंने पहले कहा, मैं कायर आदमी हूँ, इसलिए मैंने झट से कह दिया—"यह तो बहुत मामूली सी बात है। खान बहादुर रिच को तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं। कल ही तो मेरे यहां चाय पीने आए थे। क्या अच्छा होता कि आप कल आ जाते। खैर, कोई बात नहीं।"

"खुदाया तेरा लाख-लाख शुक्र।" शेर खां बिलोच ने गरज कर कहा—"तो आप उन से मिलेंगे न, मेरा रोल नम्बर लिख लीजिए, नम्बर ३६ है। ३६, भूलिएगा नहीं।"

"कभी हो सकता है ?" मैंने कहा ३६ नम्बर मुझे अच्छी तरह याद रहेगा, लिखने की क्या जरूरत। हां कल ही खान बहादुर से कह दूंगा।

"अच्छा तो मैं चलता हूं।"

"वाह साहब, अभी आए और अभी चल दिए ? एक-दो दिन तो ठहरते।"

"जरूर ठहरता, जरूर ठहरता" शेर अली खां ने उठते हुए कहा, "मगर कल दूसरा परचा है, फिर कभी हाजिर होऊंगा।"

शेर अली खां चले गए और बात आई गई हो गई, कम से कम मेरे मस्तिष्क से तो यह बात बिल्कुल निकल गई। परन्तु एक रोज क्या हुआ कि रात के ठीक ग्यारह बजे किसी ने जोर जोर से द्वार खडखडाया मैंने किवाड खोले। देखा शेर अली खां थे।

"आइये, आइये" मैंने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा।

शेर अली खां ने वहीं खडे-खडे कहा—"मैं उसी बात के लिए हाजिर हुआ हूं, कहिये कुछ बना ?"

"परमात्मा का लाख-लाख धन्यवाद है।" बहुत से मेंढ़कों ने टर्रा कर कहा।

इसके बाद कुछ क्षणों तक मौन छाया रहा। फिर दादा ने पूछा, "खैर, अब यह तो बताओ कि तुम उस नरक से निकले कैसे?"

वसन्तरूप ने मुस्कराकर कहा, "धीरे-धीरे मैं छोटे राजकुमार से हिल-मिल गया—वह मुझे नित्य प्रति भोजन खिलाता था। इसलिए यह स्वाभाविक बात थी कि अब मुझे उसके शरीर से मिलकर घिन नहीं आती थी। न मुझे अब उसकी हथेली से घृणा होती थी। मैं प्राय अब उसके कमरे में फुदकता रहता और कमरे से बाहर न निकलता। राजकुमार मुझसे बातें करता रहता और मैं उत्तर में टर्राता रहता। फिर राजकुमार मुझे बाहर भी ले जाने लगा। एक बार जब हम दोनों तालाब में नहा रहे थे तो एक रानी ने हमें देख लिया और वह जो चीखी है—जो चिल्लाई है—बस आकाश सिर पर उठा लिया—मेंढक मेरे तालाब में कहां से आ गया?

"अब पूछो भला मेंढक तो पानी का जीव है, फिर तालाब मनुष्य का कैसे हो गया, जो धरती पर उत्पन्न होता है, धरती पर सोता है, धरती पर रहता है और धरती पर मरता है। तो साहब, उस रानी ने मेरे पीछे दो-चार नौकर लगा दिये और मैं जो तालाब से उछलकर भागा हूं तो महल के चौक को फादता हुआ बरामदो में से छलाग लगाता हुआ बाहर उद्यान में आ गया। आगे मार्ग खुला था। और यह तो तुम जानते हो कि दौडने-भागने में और छलाग लगाने में मनुष्य कभी मेंढक का मुकाबला नहीं कर सकता।"

"और गाने में? गाने के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है?" शरीफा ने जो गायन-विद्या में बडी निपुण थी, प्रश्न किया।

"गाने की बात तो छोड ही दो। ये मनुष्य तो ऐसे बेसुरे होते हैं कि बाजो के बिना गा ही नहीं सकते। सगीत-कला तो अब मेंढ़को तक ही सीमित रह गई है। इस कला के हम ही उत्तराधिकारी है।"

दे रहा हूं जुग़राफिया का पर्चा बहुत बुरा हुआ है। पास होने की कतई उम्मीद नहीं है। आप खान बहादुर रिच को तो जानते होंगे। अगर उनसे मिल-मिला कर काम हो जाए तो ?"

मैंने मन में सोचा, 'कहां मैं और कहां खान बहादुर रिच। सिफारिश करना तो दूर, मैंने उन्हें देखा भी नहीं।' मगर जैसा मैंने पहले कहा, मैं कायर आदमी हूं, इसलिए मैंने झट से कह दिया—"यह तो बहुत मामूली सी बात है। खान बहादुर रिच को तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं। कल ही तो मेरे यहां चाय पीने आए थे। क्या अच्छा होता कि आप कल आ जाते। खैर, कोई बात नहीं।"

"खुदाया तेरा लाख-लाख शुक्र।" शेर खां बिलोच ने गरज कर कहा—"तो आप उन से मिलेंगे न, मेरा रोल नम्बर लिख लीजिए, नम्बर ३६ है। ३६, भूलिएगा नहीं।"

"कभी हो सकता है ? " मैंने कहा ३६ नम्बर मुझे अच्छी तरह याद रहेगा, लिखने की क्या जरूरत। हां कल ही खान बहादुर से कह दूंगा।

"अच्छा तो मैं चलता हूं।"

"वाह साहब, अभी आए और अभी चल दिए ? एक-दो दिन तो ठहरते।"

"जरूर ठहरता, जरूर ठहरता" शेर अली खां ने उठते हुए कहा, "मगर कल दूसरा परचा है, फिर कभी हाजिर होऊंगा।"

शेर अली खां चले गए और बात आई गई हो गई, कम से कम मेरे मस्तिष्क से तो यह बात बिल्कुल निकल गई। परन्तु एक रोज क्या हुआ कि रात के ठीक ग्यारह बजे किसी ने जोर जोर से द्वार खडखडाया मैंने किवाड खोले। देखा शेर अली खां थे।

"आइये, आइये" मैंने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा।

शेर अली खां ने वहीं खडे-खडे कहा—"मैं उसी बात के लिए हाजिर हुआ हूं, कहिये कुछ बना ?"

"सब कुछ ठीक हो गया है, आप तसल्ली रखें।" मैंने साफ झूठ बोला।

"क्या उन्होंने मुझे पास कर दिया है ?"

"हां हां, मैं खानबहादुर के पास गया। वे कहने लगे 'आओ यार, बहुत दिनों बाद आए हो।, मैंने कहा—एक लडके को पास कर दीजिए। बस तुरन्त उन्होंने २० नम्बर और दे दिये। अन्दर तशरीफ लाइये ?" मैंने शेर खां से कहा।

"मैं आपका किस मुंह से शुक्रिया अदा करू!" शेर अली खां ने कहा, "मैं सारी उम्र आपका अहसान नहीं भूल सकता।"

"किस का अहसान दोस्त !" मैंने विनम्र बनते हुए कहा—"मैं तो तुम्हारा खादिम हूं,यह तो एक मामूली सी बात थी।"

"हां तो आपको ठीक पता है न?" शेर खां ने कहा, "बीस नम्बर दिए थे ?"

"हां, हां पूरे बीस।"

"मेरा रोल नम्बर तो आपको याद था? भला क्या था ?" शेर खा ने पूछा।

"यही नम्बर नम्बर (कमबख्त याद नहीं आता) यही ३७ नम्बर था।"

"नम्बर ३७" शेर खां बिलोच ने चिल्लाकर कहा, "मेरा नम्बर तो ३६ था।"

"हां नम्बर ३६" मैंने हाथ मलते हुए कहा, "ओह कितनी गलती हुई। मैंने ३६ को ३७ समझ लिया।"

शेर खां बोले—"मैंने उस वक्त कहा था कि आप मेरा रोल नम्बर लिख लें, मगर आपने न लिखा। ३७ रोल नम्बर वाला लडका तो वैसे ही बड़ा लायक है।"

"ओहो ठीक याद आया," मैंने जल्दी से कहा "कितनी भूल हुई ?" तभी तो खान बहादुर कहते थे कि इस लडके के तो पहले ही बहुत

नम्बर हैं। तुम इसके बीस नम्बर किसलिए बढ़वाना चाहते हो ? क्या उसे यूनीवर्सिटी में अव्वल कराना चाहते हो ? मैंने कहा कि खान बहादुर, आप को मेरी खातिर इसे २० नम्बर और देने ही होंगे। कितनी बडी भूल हो गई।

"फिर अब ?" शेर अली खाँ ने पूछा।

"आप बिल्कुल फिक्र न करें।" मैंने उसे ढारस बधाते हुए कहा—"कल ही खांन बहादुर के यहां जा कर उन्हें यह ग़ल्ती बताऊंगा और उस लडके के बीस नम्बर काट कर आप को दे दिए जाएंगे।"

शेर अली खाँ चला गया और मैं फिर इस घटना को भूल गया। एक महीने बाद अचानक शेर अली खाँ का खत आया। वह पास हो गया था। उसने मेरा बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया था।

शेर अली खाँ की घटना के बाद तो लोगो को पूर्ण विश्वास हो गया कि यूनीवर्सिटी वाले मेरे खरीदे हुए गुलाम हैं। मैं जो चाहूं, उनसे करा सकता हूं। इसलिए इसके कुछ समय बाद ही मेरे मामा जी मुझ से मिलने आए। बातो बातो में कहने लगे कि इस साल अपने प्रकाश चन्द्र ने मैट्रिक की परीक्षा दी है। अंग्रेजी और हिसाब में पर्चे अच्छे नहीं हुए हैं। वैसे तो क्लास में काफी अच्छा है पर मुझे डर है कि कहीं फेल न हो जाए। इसलिये तनिक उसका ध्यान रखना है। परचे देखने वालों से मिल कर ।"

"हाँ, हाँ।" मैंने सिर हिला कर बडे जोश और विश्वास के साथ।—"आप तनिक चिन्ता न करें। प्रकाश को आप बस पास समझिए।"

इसके पश्चात् मामा जी के अनेको पत्र आए और हर एक पत्र में वाक्य होता था—"मैंने वह बात जो लाहौर में आप से कही थी, उसका ध्यान रखना।" इस बार मामी जी का स्नेह भी विशेष रूप से मेरे लिए उमडा। उन्होंने भी कई पत्र लिखे और हर पत्र के अन्त में मुझे अपने और प्रकाशचन्द्र के सम्बन्ध का ज्ञान कराया, "प्रकाशचन्द्र तुम्हारा भाई ही है, उसका ध्यान अवश्य रखना। यदि तुम ने उसको पास न कराया तो मैं सारी उम्र तुमसे न बोलूंगी।"

छलांग लगाने लगे। टम्पू, जम्पू और भोंपू भी चांदनी रात में नहाने के लिये चले गए। अन्त में केवल वसन्तरूप और उसकी सहचरी पुखराज झील के किनारे रह गए। झाड़ी की शाखा से जुगनुओं की लालटेन जगमगा रही थी।

पुखराज ने एक मोहक अदा के साथ वसन्तरूप की ओर देखकर कहा, "यदि मैं तुम्हारे बाद हरितरूप से विवाह कर लेती तो ?"

वसन्तरूप बोला, "लो भई, मेंढ़को को भी जुकाम होने लगा।"

"जुकाम ? यह क्या कह रहे हो तुम ?"

"पता नहीं, मैंने तो वहां महल में लोगों से ये शब्द सुने थे।"

"झूठ कहते हैं सिरफिरे। हम तो पानी में रहते हैं, फिर हमें जुकाम क्यों होगा! जुकाम होगा उन शूं-शूं करते हुए नकसड़ो को।" यह कहकर उसने फिर एक चित्ताकर्षक अदा से वसन्तरूप की ओर देखा और फिर एकदम छलांग लगाकर झील के पानी में घुस गई। वसन्तरूप जोर से टर्राया और फिर झील में घुस गया और दोनो देर तक साथ-साथ तैरते फिरते रहे।

चादनी रात थी और उनके चारो ओर कमल के फूल थे।

ग़लत । समझ में नहीं आता यह लडका सारे साल क्या करता रहा ।"

"करता क्या रहा !" लडके का बाप हाथ में छडी लेकर उत्तर देता "बदमाश कहीं का, सारा साल ताश पीटता रहा है । आप ठीक ही कहते हैं, यह पास कैसे होता । क्यो बे हरामी ।"

अब तक मैं कई लडको को इस प्रकार पिटवा चुका हूँ, परन्तु फिर भी लोग मेरा पीछा नहीं छोड़ते ।

+ + +

मैंने तग आकर अब प्रोफेसरी छोड दी है । अब मैं अनारकली में आटे, तेल, नमक की दूकान करता हूँ । परन्तु इस पर भी लोगो की ग़लत फहमी दूर होने में नहीं आती । वे समझते हैं कि मैं अभी तक प्रोफेसर हूँ और इस दूकान पर यू ही आ बैठता हूँ । या शायद यह मेरे किसी मित्र की दूकान है । अगर मैं किसी को सच्ची बात बता भी दू तो वह समझता है, मैं हँसी कर रहा हूँ । इसलिए खूब खिलखिला कर हँसते हैं ।

और कहते हैं—"हा—हा—हा—प्रोफेसर साहब आप तो बहुत ही दिलचस्प आदमी हैं ।"

सच तो यह है कि इस ससार में सच, झूट है और झूट, सच ।

आधार आत्मा है, लौकिक और भौतिक वस्तुओं से मिला रहे हो। आज ..”

बशीर से और न सहा गया। वह बोल उठा—“तुम प्रेम को इस दुनिया से परे की चीज बताते हो ? प्रेम क्या, दुनिया की हर एक चीज मैटर (matter) यानी माद्दे से बनी है। इस सच्चाई को तुम एक हवाई लैक्चर देकर नहीं झुठला सकते। जो चीज गोबर के ढेर में मच्छर पैदा करती है, वही चीज दूसरी तरफ तुम्हारे दिमाग की सलवटों में प्रेम को जन्म देती है—लैनिन ने अपनी एक किताब में यही लिखा है।”

बशीर, जैसा कि बहुत कम लोग जानते हैं, हिन्द महासागर के इस पार तीसरा शुद्ध साम्यवादी है और भारत में पांचवे इन्टरनेशनल की नींव रखने में सलग्न है। इसलिये जब कभी वह क्लब में किसी विषय पर बोलता है तो सिवाए दो-एक सिर फिरे मेम्बरो के, बाकी सब मेम्बर उसके विचार से सहमत हो जाते हैं। परन्तु उपेन्द्र उन सिर फिरे मेम्बरों में से एक था और उसका दूसरा साथी था हरि।

“यह सब बकवास है”—हरि ने बशीर की बात का विरोध करते हुए कहा—“प्रेम कोई लौकिक चीज नहीं है। यह सचमुच एक अलौकिक और आध्यात्मिक भावना है। उसका माद्दे यानि भौतिक चीजो से कोई सम्बन्ध नहीं है। बशीर ने जो नतीजे निकाले हैं, ये बिलकुल गलत हैं। और करुणा ही के सम्बन्धों को ले लो। करुणा उपेन्द्र से प्रेम है—अगाध प्रेम। करुणा एक अमीर लडकी है—मेरा मतलब है कि उसके पिता बहुत बडे रईस हैं। अब देखिए कि अमीरी और का भेद होते हुए भी करुणा उपेन्द्र से प्रेम करती है। इससे यह साफ हो जाती है कि उसके प्रेम में किसी सांसारिक वस्तु का लोभ शामिल नहीं है। उसका प्रेम शुद्ध रूप से आध्यात्मिक और अलौकिक है। वह केवल उपेन्द्र से, उसके लेखों से प्रेम करती है। उसका प्रेम निश्चय ही आत्मा का अमर आकर्षण है।”

के लिये नहीं, वरन् उसके गाउन की उलझी हुई निचली लहरों को सुलझाने के लिये। वेला उसे ऐसा करने देती है और स्नेह युक्त दृष्टि से उसकी ओर देखकर मुस्कराती है। इतने में वेला का 'वटलर' जो आयु से वेला का नौकर नहीं वरन् उसका बाप मालूम होता है, वडे रस भरे ढग से द्वार पर आकर कहता है—]

वटलर—जमशेद जी आए हैं।

वेला—(शीशे के सामने से हटकर) उन्हें अन्दर भेज दो। (एलिजा से) बस अब ठीक है। (एक अदा दिखाकर) देख एलिजा, मैं कैसी लग रही हूँ?

एलिजा—ताजा और खिले हुए फूल जैसी—मानो अभी नहाकर आई हो। (चुपके से) वे आगए, मैं जाती हूँ।

जमशेद—(वेला से) हैलो पट्टो!

वेला—(जमशेद से) हैलो, झिकझिक!

जमशेद—(एलिजा से) हैलो, छम छम! कैसी हो?

एलिजा—अच्छी हूँ, सरकार!

[एलिजा ट्रे और गिलास उठाकर द्वार से बाहर चली जाती है। जमशेद उसको तकता रहता है। जब वह द्वार से बाहर हो जाती है तो एक दम पलटकर वेला को बाहुपाश में लेकर कहता है—]

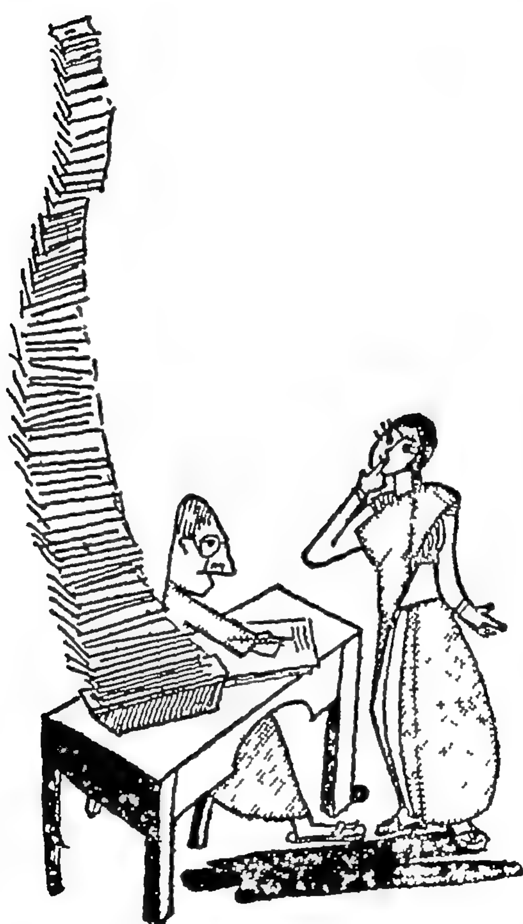
जमशेद—तुम्हारी एलिजा की चाल बहुत अच्छी है। कैसी छम छम करती हुई चलती है।

वेला—बस कल इसे निकाल दूँगी हटो, छोड दो मुझे।

जमशेद—डार्लिंग! ऐसा मत करना। मैं तुमसे शादी इसीलिये कर रहा था कि दोहरा लाभ रहेगा। तुम्हारे साथ तुम्हारी नौकरानी भी (हँसता है) समझ गई?

वेला—जमशेद, कभी तो गम्भीरता से बात किया करो। जानते नहीं कैसा समय आ रहा है। चारों ओर आग-सी लग रही है।

"परन्तु हम एक ड्यूक ऑफ विण्डसर और एक करुणा की व
नहीं कर रहे हैं।" श्याम ने बहस में भाग लेते हुए कहा—"एक ड्
ऑफ विण्ड
वहाँ और
करुणा यहाँ,
विशेष फर्क
नहीं करते।
विश्वास है कि
हम प्रेम का व
निक विश्ले
करें तो इस वि
पण के परि
इन दो अस
रण उदाह
पर भी उसी
पूरे उतरेंगे।
तरह अन्य स
रण लोगों के
पर। प्रेम
आखिर तर्क
दृष्टि से क्य
परखा जाय?
को आध्या



मानना तो केवल अपने को बच्चे की भाँति बहकाना है। प्रेम को भी
वातावरण में रख कर वैसी ही आसानी से परखा जा सकता है।
न्यूटन के आकर्षण-सिद्धान्त को या मनुष्य के शरीर से पसीना नि
की क्रिया को। सच तो यह है कि पुरुष सदा स्त्रियों में सुन्दर

इस पर जितेन्द्र से भी चुप न रहा गया। उसने अपने मस्तिष्क पर जोर डालते हुए कहा—"मैं इस बात में हरि से सहमत हूँ कि प्रेम एक आध्यात्मिक चीज है। स्त्रियाँ पुरुषो से यह देखकर प्रेम नहीं करतीं कि वे सुन्दर है या बडे धनवान हैं।"

"परन्तु क्या हिन्दुस्तान में स्त्रियां सचमुच प्रेम करती है?" क्लब के एक मरियल से मेम्बर ने डरते-डरते पूछा। परन्तु उसका प्रश्न अप्रासंगिक था, इसलिए किसी ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया।

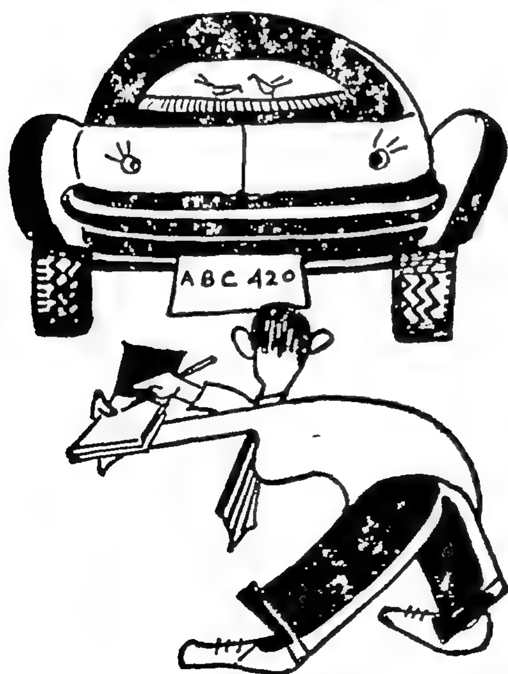
"मै कह रहा था," जितेन्द्र ने फिर से बोलते हुए कहा—"हाँ तो मैं कह रहा था, मैं क्या कह रहा था? हाँ, ठीक ठीक, मैं यह कह रहा था कि स्त्रियां पुरुषो से इसलिए प्रेम नहीं करती कि वे सुन्दर या धनी होते हैं। ये अपनी आत्मा की प्यास बुझाने के लिए प्रेम करती है। तनिक ध्यान दीजिए कि अच्छी स्त्रियो ने प्रेम करने के सम्बन्ध में सदा ही डाक्टरो, इन्जीनियरों, डिप्टी कमिश्नरो, पूजी पतियो और उच्च वर्ग के पुरुषो के मुकाबले में, गरीब साहित्यिको, फौज के सिपाहियों, होटल के नौकरो और फुटवाल और क्रिकेट के खिलाडियो को प्रधानता दी है। प्रेम की प्रतियोगिता में स्त्री उस पुरुष को चुनती है जिसमें कोई असाधारण विशेषता हो। वास्तव में किसी स्त्री का प्रेम पाने का तरीका उसकी नजरो में चढने के लिए कोई असाधारण काम करे। साहित्यिक हो तो एक करोड शब्दों का एक लम्बा-चौडा लेख लिख डाले, खिलाडी हो तो अपने हाथ पांव बंधवा कर अधिक-से-अधिक देर तक तालाब में तैरने की कोशिश करे, सिपाही हो तो . "

"घुटनो के बल बाजार में चलने की कोशिश करे।" मुजीब ने बीच में बात काटी।

जितेन्द्र ने गम्भीर होकर कहा—"मेरा मतलब यह है कि पुरुष कोई ऐसी बात अवश्य करे कि वह अपनी प्रेमिका की दृष्टि में असाधारण और महामानव प्रतीत हो। उसके सिर के चारो ओर दैनिक प्रकाश दिखाई देने लगे। ड्यूक ऑफ विण्डसर की बात लीजिए। ड्यूक ."

अब सब की दृष्टि सुक्खो पर गडी थी—सुक्खो जो कहानीकार था। वह क्या कहना चाहता था, प्रेम के बारे में उसके क्या विचार थे, यह जानने के लिए क्लब के सारे मेम्बर आतुर हो उठे। सुक्खो आज इस तमाम बहस में मुंह फुलाए एक ओर बैठा रहा था। सब की आंखें अपने चेहरे पर लगी देखकर वह अपनी कुर्सी पर विकलतापूर्वक हिला, कसमसाया और कहने लगा—"मैं तुम्हे एक कहानी सुनाना चाहता हूं—यह कहानी आपबीती है।"

"एक बार का जिक्र है।" सुक्खो ने कहना आरम्भ किया "मुझे एक लडकी से पहली ही निगाह में प्रेम हो गया। मैंने उस जैसी सौन्दर्य की प्रतिमा आज तक नहीं देखी। जैसे-जैसे मैं उसकी ओर देखता जाता था, मेरा प्रेम बढता जाता था और यद्यपि इसमें कोई शक नहीं कि मैं प्लाजा थियेटर के तीसरे दर्जे में बैठा था और वह फर्स्ट क्लास में, परन्तु फिर भी मेरे प्रेम का यह हाल था कि सिनेमा का पर्दा इधर था और मैं पीछे फर्स्ट क्लास की ओर देख रहा था। खेल के समाप्त होने तक मुझे विश्वास हो गया कि परम पिता परमेश्वर ने मुझे एक अमर भावना से प्रेरित किया है। इसलिए



खेल खत्म होने के बाद मैंने इस शाश्वत भावना से उन्मत्त होकर

जमशेद—तो हम चोर-बाजारी करेंगे और तुम्हे 'गुड-बाई' कह देंगे—'टा-टा'। अपने खानदान को तो बस दो ही काम आते हैं। हा, एक तीसरा काम शराब बचने का भी था, परन्तु वह 'मद्य-निषेध कानून' के कारण बन्द हो गया है। अरे हा, कुछ पिलाओगी नहीं क्या ?

बेला—क्या पिओगे ?

जमशेद—होठों की 'वरमाउथ', आखो की शैम्पेन, आलिगन की 'व्हिस्की'।

बेला—चप्पल की बरांडी नहीं ?

जमशेद—वह शादी के बाद।

[दोनो हँसते हैं]

जमशेद—नहीं, सच, बडी प्यास लगी है। जल्दी से कुछ पिला दो।

बेला—(पलट कर निकट की अल्मारी खोलती है जिसमें शराब की बोतलों की पक्तियां दिखाई पडती हैं। फिर जमशेद की ओर मुडकर देखती है।)—क्या पिओगे ? कोनिक या बोर्बे ?

[जमशेद बेला को बाहो में लेकर उसका चुम्बन ले लेता है। बेला एक सिनेमा अभिनेत्री की भांति एक लम्बा चुम्बन देती है और पीछे की ओर झुक जाती है। चुम्बन के बाद वह एक लम्बा सांस लेती है और अपना चेहरा जमशेद के कन्धे पर रख देती है।]

जमशेद—कितनी अच्छी शराब थी ?

बेला—कितना लम्बा चुम्बन था ! Kiss me joe वाले चुम्बन की भांति।

जमशेद—नहीं, उससे दस सैकिंड कम था। (बेला उसकी ओर आश्चर्य चकित नेत्रो से देखती है।) हा, हां, मै घडी देख रहा था।

[बेला धीरे से शराब की बोतल उठाकर ड्राइग-रूम के कोने में 'बार' की ओर घूमती है। वहां पहुंचकर बिल्लोर के दो

प्रेमिका से शादी का प्रस्ताव करो। कम्बख्त सामने बैठा तो है, पूछ लो न।"

"फिर क्या हुआ ?" हम सब ने एक साथ चिल्ला कर कहा।

"कुछ नहीं" लुक्खो ने शान्त स्वर में कहा—"उस दिन जब मैं उसके पढ़ने के कमरे में पहुँचा तो वह बड़े प्यार से उस समय आराम कुर्सी पर बैठी ऊँची आवाज में टैनीसन की कविताएँ पढ रही थी और अपने मधुर, कोमल और रसीले कंठ का स्वय ही आनन्द ले रही थी। मुझे देखते ही कहने लगी—"हल्लो बुद्धू अडवानी।" वह मुझे इसी नाम से पुकारा करती थी।"

"हल्लो किर .की," मैंने उत्तर दिया। मैं उसे इसी तरह पुकारा करता था।

"हल लो, यह क्या, आज तुमने एक नई टाई बाँध रखी है ? खैरतो है ?"

मैंने अपने चेहरे पर एक म्लान, विषादयुक्त मुस्कान पैदा की और कुर्सी घसीट कर उसके निकट बैठ गया और धीमे स्वर में कहने लगा—

"पढ़े जाओ किर . की, पढ़े जाओ। मैं तुम्हारी मीठी आवाज सुनता रहना चाहता हूँ, यहाँ तक कि यह आवाज कीट्स की बुलबुल के नगमे की तरह मुझे अपने में समा ले। आह तुम्हारी आवाज किस कदर मीठी है।"

उसने और ऊँची आवाज में पढना शुरू कर दिया। परन्तु अब वह चीख रही थी और बड़ी कड़वाहट से मेरी नकल उतार रही थी।

"कल मैंने वाई० एम० सी० ए० में पिंगपांग चैम्पियनशिप जीत ली।" मैंने अपने सिर के चारो ओर प्रकाश-मण्डल बनाते हुए कहा।

"बहुत खूब" किर .की ने जवाब दिया—"तुम एक दीवार के मुकाबले में खेल रहे थे ?"

"किरकी, मज़ाक की हद हो चुकी," मैंने रुंधे हुए गले से कहा—

जितेन्द्र और उपेन्द्र अपनी कुर्सियों पर इस तरह सहमे वैठे थे, जैसे किसी मास्टर की घुडकी से बच्चे सहम कर बैठ जा



आतिशदान में जलती हुई लकडियो पर तेज-तेज शोले चमक जाते थे

एक क्लब के सब से पुराने मेम्बर ने अपना झुका हुआ सिर उठा और सुक्खो के म्लान मुख की ओर देखकर कहा—

"बेटा सुक्खो, ग़म खाने से क्या होता है। इन्क़लाब के लिए का करो, और शुक्र करो कि अपने आध्यात्मिक प्रेम के बावजूद जिंदा हो वरना अगर तुम किसी बुर्जुवाई उपन्यास के हीरो होते तो इस घटना बाद निश्चय ही आत्म-हत्या कर लेते।"

एलिज़ा—मुँह का मजा वदलने ने के लिये ?

जमशेद—नही, सच, वडी प्यारी लग रही हो, छमछम ! (आगे वढ़ता है। एलिजा पीछे हटती है।)

एलिज़ा—देखिये, देखिये, वह आपके पीछे कौन है ?

[जमशेद पलट कर देखता है। दूसरे कोने में एक आदमी खद्दर का कुर्ता और धोती पहिने, हाथ में चमडे का थैला उठाये, और आंखो पर ऐनक जमाए खडा है। जमशेद को अपनी ओर मुडता देखकर वह मुस्करा देता है, ऐनक ठीक करता है और गले को साफ करता हुआ एक विलक्षण-सी आवाज़ निकाल कहता है—]

वमन भाई—मैं ओल्ड प्रेस से भेजा गया हूँ। मिस बेला बाटलीवाला का इन्टरव्यू करने के लिये।

जमशेद—(निराश होकर उससे हाथ मिलाते हुए) ओ गौश ! (फिर वह तेज़ी से चला जाता है।)

एलिज़ा—अन्दर चलिये। इस समय आपने मुझे एक लम्बे, व्यर्थ, कड़ुवे और अनचाहे इन्टरव्यू से वचा लिया। धन्यवाद !

[वमन भाई रूमाल से अपना चेहरा साफ करता है। फिर अपनी चप्पल पर पडी हुई धूल को अपराधी की भांति देखता है, और फिर ड्राइंग रूम के सुन्दर, मूल्यवान गालीचे पर हल्के-हल्के, उलझे-उलझे क़दमो से आगे वढता चला जाता है। बेला उसे देखकर उठती नहीं है। एलिजा एक कुर्सी लाकर सोफे के सामने रख देती है। वमन भाई उस पर बैठ जाता है]

भाई—(हकलाते हुए) आप बे-बे-बेला बा-बा-बाटलीवाला हैं ?

जी हा, जी हा, कहिये।

वमन भाई—मुझे ओल्ड प्रेस वालों ने आ-आपसे इन्टरव्यू करने के लिये भे-भजा है।

बेला—मैं हाज़िर हूँ।

जिनेन्द्र और उपेन्द्र अपनी कुर्सियों पर इस तरह सहमे हुए बैठे थे, जैसे किसी मास्टर की घुड़की से बच्चे सहम कर बैठ जायें।



आतिशदान में जलती हुई लकड़ियों पर तेज तेज शोले चमक जाते थे। यकायक क्लब के सब से पुराने मेम्बर ने अपना झुका हुआ सिर उठाया और सुक्खो के म्लान मुख की ओर देखकर कहा—

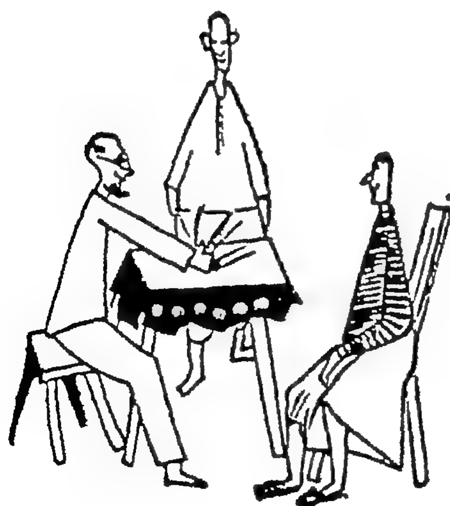
"बेटा सुक्खो, ग़म खाने से क्या होता है। इन्क़लाब के लिए काम करो, और शुक्र करो कि अपने आध्यात्मिक प्रेम के बावजूद जिंदा हो, वरना अगर तुम किसी बुर्जुवाई उपन्यास के हीरो होते तो इस घटना के बाद निश्चय ही आत्म-हत्या कर लेते।"

माँगे की किताबें

९.

कल एक प्रतिष्ठित प्रकाशक बातो में मुझसे कहने लगे—"इस देश के पढ़े-लिखे लोगो में माँगकर किताबें पढने की बीमारी है। जब तक इस बीमारी को दूर नहीं किया जाता, किताबो और पत्रिकाओ की बिक्री नहीं बढ सकती और लेखको को उनकी रचनाओ का पारितोषिक नहीं दिया जा सकता।"

नरेन्द्र ने, जो पास ही एक लगडी कुर्सी पर उकडू बैठा था, उनसे पूछा—"तो ऐसी क्या तदबीर हो सकती है जिससे यह अभिशाप पढे-लिखो से दूर हो सके। वे किताब मांग कर पढने के बजाए खरीद कर पढने लग जाएँ।"



"है तो यह टेढी खीर, लेकिन" और रहस्योदघाटन करने से पहले वे तनिक रुके। मैं सतर्क हो गया और नरेन्द्र सम्हल कर बैठ गया।

"मेरी योजना है", उन्होंने एक-एक शब्द गिन कर श्रदासे कहा—

"एक लीग बनाई जाए, लीग .यानि सस्था। जिसकी सारे भारत में शाखाएं हो। इस लीग के कम से कम एक लाख मेम्बर हों और हर मेम्बर से एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराए जाएं कि महीने में कम से कम वह दो रुपए की किताब अवश्य खरीदेगा। इस प्रकार किताबों की निकासी के साथ-साथ लेखकों की रोटियों का भी सन्तोषजनक प्रबन्ध हो सकता है।"

नरेन्द्र ने उछलकर कहा "वाह, क्या सुन्दर योजना है। न जाने पहले किसी को क्यों न सूझी। मगर इसको शुरू कैसे किया जाए ?"

"यह शुरू करने की बात जरा कठिन है", मैंने कहा "लीग का प्रधान कौन हो ? इसके नियम क्या हों ? इसकी कार्यवाही किस भाषा में हो और चन्दा लाने और रखने के लिए एक ईमानदार आदमी को कहां ढूंढा जाए ?"

'बन्धुवर !" प्रकाशक महोदय ने मुझे चुप कराने के लिए कहा, "तुम्हें तो बात की खाल उतारने और बात का बतगड बनाने की बुरी आदत हो गई है। अमां यह सब बातें दोस्तो के सहयोग से सुलझाई जा सकती हैं। हमको प्रोपेगेंडा करना चाहिए और पैमफ्लेटों द्वारा लोगों को बताना चाहिए कि मागकर किताबें पढ़ने के क्या-क्या नुकसान हैं। सच यह है कि पढ़े-लिखे लोगों में साहित्य का सक्रिय सरक्षण करने की भावना जगानी चाहिए। साहस और लगन से काम करने की देर है— लाख मैम्बर बना लेना कोई कठिन काम नहीं। और जिस दिन लाख मैम्बर बना लिए गए, साहित्य की काया पलट हो जाएगी।

"काया पलट नहीं, काया-कल्प कहिए। यह आजकल का फैशन हो गया है जो जोरनाफ के बन्दरो से शुरू हुआ और मालवीय जी तक जा पहुंचा, और अब आप इसे साहित्य पर आजमाना चाहते हैं।" मैंने तनिक तेज होकर कहा, "भला कहीं पैमफलेट बाजी से पढे-लिखे लोगों की आदत को बदला जा सकता है ? यह आपकी लीग कागजी बनकर रह जाएगी और प्रतिज्ञा-पत्र पर कोई न चलेगा। आप कैसी आध्या-

[बेला घंटी बजाती है। एलिजा आती है।]

बेला—पानी और चाय लाओ।

[एलिजा चली जाती है।]

वमन भाई—अच्छा, तो आपको कशीदाकारी बहुत पसन्द है? परन्तु मुझे तो बड़े सम्पादक ने बताया था कि आ-आपको सोशलिज्म से बड़ी दिलचस्पी है। मैं इसीलिये आप से इन्टरव्यू करने के लिये उपस्थित हुआ था। परन्तु क-कशीदाकारी का सो-सोश-लिज्म से क्या सम्बन्ध है?

बेला—(चौंक कर बैठ जाती है) नहीं, नहीं, मुझे सोशलिज्म बहुत पसन्द है। मेरा एक चाहे मेरा एक मित्र है, स्वदेश कुमार। वह मुझे सोशलिज्म समझाता रहता है। बड़ा अच्छा लड़का है वह! उसके पिता की छ. मिलें हैं ।

वमनभाई—तो आप सोशलिस्ट हैं?

[एलिजा अन्दर आ रही है।]

बेला—जी हां, मेरा विश्वास है कि सब मनुष्य बराबर हैं। मैं सब लोगों से बराबरी का व्यवहार करती हूँ। अपनी नौकरानी को अपने साथ टेबल पर खाना खिलाती हूँ। पूछ लीजिये ।

एलिजा—और अपने कुत्ते को मोटर में अपने साथ बिठाती हैं। पूछ लीजिए।

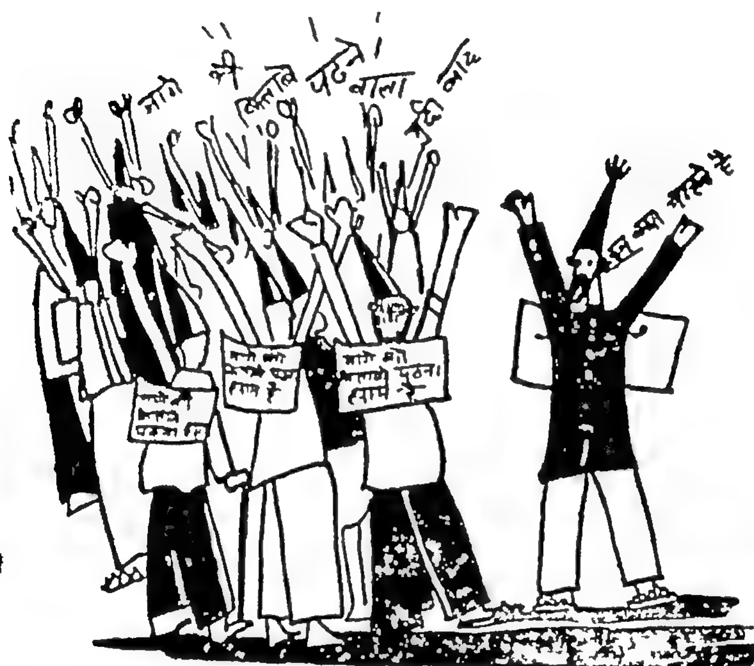
बेला—एलिजा!

देखिये, परसों हमारे बटलर को बुखार हो गया था। इन्होंने डाक्टर को स्वयं अपने हाथ से टेलीफोन किया। पूछ लीजिये।

(चीखते हुए) एलिजा!!

एलिजा—कभी-कभी मैं इनके शीशे का भी प्रयोग कर लेती हूँ—अपना मुंह देखने के लिये। यह सोशलिज्म नहीं तो और क्या है?

और मैं उत्तर में कहता हूं—"मांगे की किताब. . . ." अरर र गलती हुई। मुझे कहना चाहिए था—"किताबों की बिक्री।" खैर इस भरे जलूस में तूती की आवाज कौन सुनता है ?



नरेन्द्र चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है—"मांगे की किताबें पढने वाला ?"

हम सब मिलकर चिल्लाते हैं—"मुर्दाबाद।"

और इस तरह शोर मचाता, गले फाडता हुआ यह जलूस बाजारों में से गुजर जाता है।

आर्थिक और नैतिक दृष्टिकोण की बात अलग, पर यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो आनन्द मांगे की किताबें पढ़ने से मिलता है, वह उन्हें खरीद कर पढने से प्राप्त नहीं होता। किताब खरीद कर

त्मिक बातें करते हैं श्रीमान् ।

नरेन्द्र एक लम्बी सांस भर कर बोला—"हां यह ठीक है । आप किसी को किताबें खरीदने पर मजबूर नहीं कर सकते । यह सचमुच एक हवाई और रूमानी सी योजना है ।

प्रकाशक महोदय ने मुस्कराते हुए मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"आपकी हठीले बच्चों की तरह बातें करने की आदत अभी तक गई नहीं ।"

\+ \+ \+

अब जैसे-जैसे मैं इस लीग की स्थापना पर ग़ौर करता हूं मुझे अफसोस होता है कि मैंने प्रकाशक महोदय की योजना का विरोध क्यों किया ? यह लीग एक क्रांति लाने वाली संस्था भले ही न बने परन्तु कम से कम एक सुधारक संस्था तो जरूर बन सकती है। 'टैम्परेंस लीग' की भाँति । शराब खोरी की रोक-थाम की तरह, मांगे की किताबें पढ़ने की भी रोक की जा सकती है । या कम से कम इसके विरुद्ध लोगों की अच्छी भावनाओं को उभारा जा सकता है । पैमफलेट निकाले जा सकते हैं । जलूस निकाले जा सकते हैं, जल्से किए जा सकते हैं । तनिक कल्पना कीजिए कि शहर के समस्त साहित्यिक मिलकर बाजारों से गुजर रहे हैं । सब ने कागज की लम्बी-लम्बी टोपियां पहन रखी हैं । गत्तों पर मोटे-मोटे अक्षरों में शिक्षाप्रद नारे लिखे हुए हैं—

"मांगे की किताबें पढ़ना पाप है ।"

"ऊंट को सुई के नाके में से निकाला जा सकता है, लेकिन मांगे की किताबें पढ़ने वालों को स्वर्ग के द्वार से नहीं दाखिल किया जा सकता ।"

"जो मांगे की किताबें पढ़ता है, वह देश के साथ गद्दारी करता है ।"

और प्रकाशक महोदय अपनी गांधी टोपी को आगे झुकाकर आवाज़ देते हैं—"हम क्या चाहते हैं ?"

किताब खरीदता हूं, मुझ से मांग कर पढ़ने वाले दोस्त उसे मुझ से अधिक पसन्द करते हैं। आनन्द किताब पढ़ने में नहीं, किताब मांग कर पढ़ने में है।

हां आर्थिक दृष्टिकोण से प्रकाशक महोदय का शिकवा ठीक है।

और हिन्दुस्तान के लेखकों की गरीबी और दुर्दशा एक मानी हुई वास्तविकता है। परन्तु उसका इलाज यह एक लाख मेम्बरों वाली लीग नहीं कर सकती।

स्थिति का भयंकर रूप यह है कि भारत में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या कुल आबादी का १० प्रतिशत है। और उनमें से भी बहुत से नाम मात्र को ही पढ़े-लिखे हैं। जो लोग बाकी रह गए, ऐ उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो मोकाडा मंडी और बम्बई भड़ोच की रुई का भाव जानने के लिए अखबार लेते हैं। अगर कोई पत्रिका मिल जाए तो उनमें श्री कृष्ण महाराज की मूर्ति ढूंढने लगते हैं और यदि न मिले तो उसे लौटा देते हैं। फिर हलवाई और ढाबे वाले हैं जो अपने ग्राहकों के लिए प्रतिदिन अखबार खरीदते हैं। फिर उस अखबार की जो दुर्दशा होती है— एक एक पन्ना अलग किया जाता है, उस पन्ने के, कालमों के लिहाज से टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। और फिर एक ग्राहक गटागट लस्सी पीता हुआ श्री मन्थन 'लुप्त' की सनसनी-खेज कहानी पढ़ रहा है। दूसरा गाहक गुलगुले खाते हुए



का। दो अलग-अलग विजनेस है ।

वमन भाई—वि-विजनेस ? मैं-मै आपकी बात नहीं समझा ?

एजिज़ा—मैं समझाती हूँ। ये विवाह तो एक ब्लैक मार्केटियर से करेंगी और प्रेम एक सोशलिस्ट से।

वमन भाई—(जोर-जोर से हँसता है) भई वाह ! खूब ! फिर जोर-जोर से हँसता है और रुमाल निकाल कर उसे झाडता है जिससे घूल चारो ओर उडती है। फिर रुमाल से मुँह पोंछ कर उसे जेब में रख लेता है। वेला जोर-जोर से खासने लगती है।)

वमन भाई—आपको खासी कब से है ?

वेला—जी ?

वमनभाई—इसकी चिकित्सा कराइये। वहुत बुरा रोग। इससे तपेदिक . ।

वेला—मेरे ख्याल में इन्टरव्यू काफी हो चुका है। आपको अपने समाचार-पत्र के लिए काफी मसाला मिल गया होगा। अब यदि आप ।

वमन भाई—व-वस, एक प्रश्न और। यह भ-भ-भगियो की हडताल के सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है ?

वेला—मैंने ? मैंने तो कुछ नहीं सोचा। मुझे तो यह भी पता नहीं कि भगियो की हडताल हो रही है या होने वाली है। कम से कम मेरी कोठी में तो ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती।

वमन भाई—अजी, हडताल होने वाली नही है, हो रही है। सारे नगर में कूडा-करकट बुरी तरह फैल रहा है। चा-चारो ओर गदगी है और व-वदबू। भगी काम नहीं करते। (घवराकर) और वी-वी-वी ।

वेला—वीवी अमृतकौर ?

वमन भाई—नहीं, नहीं वी-वी-वीमारी फैल रही है जी। का-का-काग्रेस ने अपील की है कि लोग स्वय अपने मोहल्लो में झाडू लगाए। तो आपका क्या ख-ख्याल है ?

किताब खरीदता हूँ, मुझ से माँग कर पढने वाले दोस्त उसे मुझ से अधिक पसन्द करते हैं। आनन्द किताब पढ़ने में नहीं, किताब माँग कर पढ़ने में है।

हां आर्थिक दृष्टिकोण से प्रकाशक महोदय का शिकवा ठीक है।

और हिन्दुस्तान के लेखकों की गरीबी और दुर्दशा एक मानी हुई वास्तविकता है। परन्तु उसका इलाज यह एक लाख मेम्बरों वाली लीग नहीं कर सकती।

स्थिति का भयकर रूप यह है कि भारत में पढ़े-लिखे लोगो की सख्या कुल आबादी का १० प्रतिशत है। और उनमें से भी बहुत से नाम मात्र को ही पढ़े-लिखे हैं। जो लोग बाकी रह गए, ऐ उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो ओकाडा मडी और बम्बई भडोंच की रुई का भाव जानने के लिए अखबार लेते हैं। अगर कोई पत्रिका मिल जाए तो उनमें श्री कृष्ण महाराज की मूर्ति ढूढने लगते हैं और यदि न मिले तो उसे लौटा देते हैं। फिर हलवाई और ढ़ाबे वाले हैं जो अपने ग्राहको के लिए प्रतिदित अखबार खरीदते हैं। फिर उस अखबार की जो दुर्दशा होती है— एक एक पन्ना अलग किया जाता है, उस पन्ने के, कालमों के लिहाज से टुकडे-टुकडे किये जाते हैं। और फिर एक ग्राहक गटागट लस्सी पीता हुआ श्री मन्थन 'लुप्त' की सनसनी-खेज कहानी पढ़ रहा है। दूसरा गाहक गुलगुले खाते हुए



श्री 'दत्त' जी की जबड़ा तोड़ कविता पढ़ रहा है। इतने में तीसरा गाहक झपट्टा मार कर कहता है—'हाय, कोरिया का क्या हुआ? सुबह से शाम तक अखबार सैकड़ों हाथों से गुजर जाता है और फिर दुकान बन्द करते समय हलवाई उसी अखबार में बासी पकौड़ियां लपेट कर किसी मुझ जैसे गरीब लेखक को दे देता है।

फिर ये लोग हैं जिन्होंने पेन्शन पाली है या ठेकेदारी से छुट्टी पाली है और जमा पूंजी से एक मकान या कोठी बना ली है और अब अगला जन्म सुधारने की फिक्र में हैं। अब ये लोग दिन-रात माला जपते हैं और अपने पाप धोने की धुन में लगे रहते हैं। इन्हें भला प्रकाशक महोदय के साहित्य से क्या सरोकार? ये लोग पत्रिकाएँ पढ़ते हैं, खरीदते भी हैं मगर कौन-सी? 'धर्म प्रकाश' 'ज्ञान ज्योति' 'निर्वाण'। इसीलिए हिन्दुस्तान में सब से ज्यादा छपने वाली पत्रिकाए ये धार्मिक पत्रिकाए और अखबार ही हैं। अब जो बाकी रह गए उनमें से अधिक संख्या ऐसे लोगों की है जो सदा अंग्रेजी किताबें और पत्रिकाए खरीदते हैं। वे एक घटिया दर्जे के अंग्रेज़ी लेखक की किताबें खरीद लेंगे। लेकिन 'वर्नाक्यूलर लिटरेचर' नहीं खरीदेंगे। इस से इनके मानसिक स्तर के एक दम नीचा गिर जाने का डर रहता है। और अब जो बचे, उन्हें साहित्य से लगाव तो होता है पर महीने भर मेहनत करने के बाद उनकी जेब में एक रुपया भी नहीं होता और अगर होता है तो कोई न कोई किताब वे अवश्य खरीद लेते हैं।



मेरे मोहल्ले में एक साहव रहते हैं जिनका मोटरो का कारवार है। एक और साहव हैं वह वैंक में नौकर हैं। मैं अपना अखवार पूरी तरह पढ़ने नहीं पाता कि मोटरो वाले साहव अखवार मंगा भेजते हैं। वह भी पूरा पढने नहीं पाते कि वैंक के वावू माग वैठते हैं कि उन्हें अखवार दे दिया जाय, क्योंकि उन्हें दफ्तर जाना है। कभी तो अखवार पढकर वे लौटा देते हैं और कभी उनके नन्हें की अम्मा उसे चुल्हे में झौंक देती हैं। वास्तव में अखवार का इस से अच्छा प्रयोग क्या हो सकता है ?

वास्तव में मागे की कितावें पढना और मागे की चीजें काम में लाना हिन्दुस्तानियों की एक विशेषता है। यहा केवल कितावें ही उधार नहीं दी जातीं, मुझे अपने उस मित्र की अव तक याद है जो एक दिन मेरा गर्म सूट मांग कर ले गया था और अभी तक लौटाने की किसी शुभ तिथि का इन्तजार कर रहा है। वह नई कुर्सी जो पडौसी ने वहुत से मेहमानों के आ जाने की वजह से मंगवाई थी, मेहमानो के चले जाने के वाद भी उन्हीं के कमरे की शोभा वनी हुई है। हिन्दुस्तान में जिन्दगी उधार के सहारे चलती है। साहूकार रुपया उधार देता है, जमीदार जमीन उधार देता है, और 'सस्ता पुस्तक भडार' गरीव क्लर्को को उपन्यास किराये पर देता है। यहां उपन्यास ही किराये पर नहीं दिये जाते बल्कि इन्सान भी गिरवी रखे जाते हैं और चांदी के कुछ टुकडों के वदले आत्मायें उधार मिल जाती हैं। तुम मागे की कितावों के विरुद्ध 'जिहाद' करते हो, लेकिन कौन है जो इन मागे की आत्माओं के लिए जिहाद करेगा ! उधार चीजो के वारे में मुझे एक वात याद आगई। एक वार मैं देहात में घूमने गया। मेरे साथ एक जाट दोस्त था। उसकी उम्र चालीस वर्ष होगी, लेकिन उसकी शादी न हुई थी। जव मैंने पूछा तो उसने वताया कि हमारे इलाके में औरतो की वडी कमी है, क्योंकि कुछ समय पहले विशेषकर सिक्खो के काल में, लडकियों को पैदा होते ही मार दिया जाता था। इसलिये औरतो की वडी कमी हो गई और इसी कारण वह अभी तक कुवारा था। लेकिन उसके वड़े भाई की शादी हो चुकी

की झाड़ू हैं।

बेला—झाड़ू तो है, परन्तु भगी तो नहीं है।

वमन भाई—हा, भगी ह-ह-हडताल पर है, यही तो मुसीबत है। कहते हैं हमारी मजदूरी बढ़ाओ। जो कुछ मिलता है उससे निर्वाह नहीं होता।

बेला—यही मेरे नौकर भी कहते हैं। (चीख कर) अरे, इनका वेतन न बढ़ाना। तुम कहोगे तो मैं सारे शहर में झाड़ू फेरूगी। तुम कहो तो अपनी सारी सहेलियो को बुला लूं। कहो तो मैं सारे मालाबार हिल के करोडपतियो को एकत्रित कर लूं। हम सब मिलकर झाड़ू फेरेंगे। परन्तु भगियो या नौकरो का वेतन कभी नहीं बढ़ाएगे।

वमन भाई—जय-हिन्द !

बेला—(घटी बजाकर) एलिजा ! एलिजा !!

[एलिजा हाथ पर एक लहगा और चोली डाले हुए प्रवेश करती है]

बेला—यह क्या है ?

एलिजा—सरकार ! आपकी आवाज बाहर तक आ रही थी। मैंने सुन लिया और मैं अपनी भगिन से यह लहगा, चोली, झाड़ू और टोकरी ले आई। सरकार ये कपडे पहनिये, और यह टोकरी लेकर इस झाड़ू से सफाई कीजिये।

[एलिजा टोकरी फर्श पर रखती है। उसमें से एक नन्हा बच्चा उठ बैठता है।]

बेला—(चकित-सी होकर) और क्या है यह ?

एलिजा—यह भगिन का बच्चा है सरकार ! इसे न केवल यह गन्दा लहगा और फटी हुई चोली पहनकर और सिर पर टोकरी रखकर कूडा ढोना पडता है, वरन् साथ-ही-साथ इस नन्हे-से बच्चे को भी गोद में सम्हालना पड़ता है।

गाना

१०.

....

गाना कई प्रकार का होता है। एक प्रकार का गाना तो वह है जो प्रायः हमारे मध्यम वर्ग के घरानों में गाया जाता है, और यदि भाग निकलने का मार्ग न मिले, तो सुना भी जाता है। प्राय एक घटिया-सा सस्ता हारमोनियम होता है। वैसे तो सगीत की दृष्टि से हर प्रकार का हारमोनियम निकृष्ट होता है, परन्तु जो हारमोनियम इन मध्यम वर्ग के घरानों में पाया जाता है, वह वहुधा तीसरे और चौथे दर्जे का होता है। परन्तु यह तो अप्रासगिक विषय था। चर्चा तो गाने की थी। गाने के लिए, मध्यम वर्ग के घराने में हारमोनियम के अलावा एक लडकी भी अवश्य होती है। वहुत से घरानों में एक से अधिक भी लडकियां होती होंगी; परन्तु साधारणतया एक ही काफी है। आप इस लडकी को जो चाहें, कहकर पुकारिए—विमला, कमला, प्रकाश। मतलव एक ही है, अर्थात् मध्यम वर्ग के घराने की लडकी, जो गाना जानती है और जिस पर समस्त घर वालों को 'गर्व' है। अव इस लडकी को आप ध्यान में रखिए और उस हारमोनियम की कल्पना कीजिए, जो मेज के ऊपर लकडी के उस वक्स में बडी सावधानी से वन्द किया हुआ रखा है, जिस पर खाकी जीन का या छींट का गिलाफ चढ़ा हुआ है।

इन घरानो में आम तौर पर गाना, खाने के वाद शुरू होता है, और इसकी प्रेरणा प्राय वह अभागा मेहमान देता है, जो किस्मत का मारा, भूल से इधर आ निकलता है। खाने के पश्चात् पेट पर दो तीन वार हाथ फेर कर, और चार पांच लम्वी डकारें ले कर, मेहमानदार

थी। और वह प्राय. उन्ही से उसकी पत्नी उधर माग कर अपना काम चलाता था। यह कोई आश्चर्य की बात न थी। ऐसे बहुत से मुकदमें हुआ करते थे जिनमें कोई गरीब किसान, जब साहूकार या जागीर दार का सूद दर सूद नहीं दे सकता था तो अपनी पत्नी उसके यहा गिरवीं रख देता था।

अब जब मैं इन सब बातो पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं किसी देवता से कम नहीं हूँ, क्यो कि भारत की इस स्वर्ग-भूमि में, जहां मागे की पत्निया भी मिलती हैं, मैं केवल मांगे की किताबो पर सन्तोष करता हूँ।

टूट जाता है, या वैसे ही घडड-घडड की आवाजें आने लगती है।

मेहमानदार बुरा सा मुंह बनाकर आवाज देता है—"अरे मुन्ने, ग्रामोफोन बन्द कर दे (और फिर मुस्करा कर) विमला, बेटी विमला, अब तुम आओ। जरा इन्हें अपना गाना तो सुनाओ।"

विमला मध्यम वर्ग की लडकी है, लज्जा के मारे कानो तक लाल हो जाती है और सिर झुका लेती है और इस प्रकार कि मेहमान को पूरा विश्वास हो जाता है कि विमला गाना तो क्या, बोलना भी नहीं जानती।

मेहमानदार दूसरी बार, प्यार से परन्तु तनिक ऊंची आवाज में कहता है,—"विमला, हारमोनियम ले आना, वहाँ अलमारी में रखा है।"

और मेहमान जिसकी पलकें नींद के मारे झुकी जा रही है, धीरे से विमला को उत्साहित करने के लिए कह देता है, "हां, विमला बहन कुछ सुना दो; सुना है तुम बहुत अच्छा गाती हो (फिर जल्दी से यह वाक्य जड देता है।) राम भरोसे की मां से सुना था।"

और यह सब कुछ कोरा झूठ होता है। न बेचारी विमला अच्छी तरह गा सकती है, और न राम भरोसे की मा गाना सुन सकती है, क्योंकि वह बहरी है। और फिर 'बहन विमला'—इसका क्या किया जाए कि भारत में स्त्रियाँ केवल दो प्रकार की होती हैं—एक माएँ और दूसरी बहनें। यदि सुन्दर हो, युवती हो, तो 'बहन'; और कुरूपा, अधेड और बूढ़ी हो, तो 'मां'। स्त्रियों के बस यही दो प्रकार हैं, तीसरा कोई नहीं, क्योंकि विवाहित स्त्री, स्त्री नहीं रहती, पैर की जूती बन जाती है।

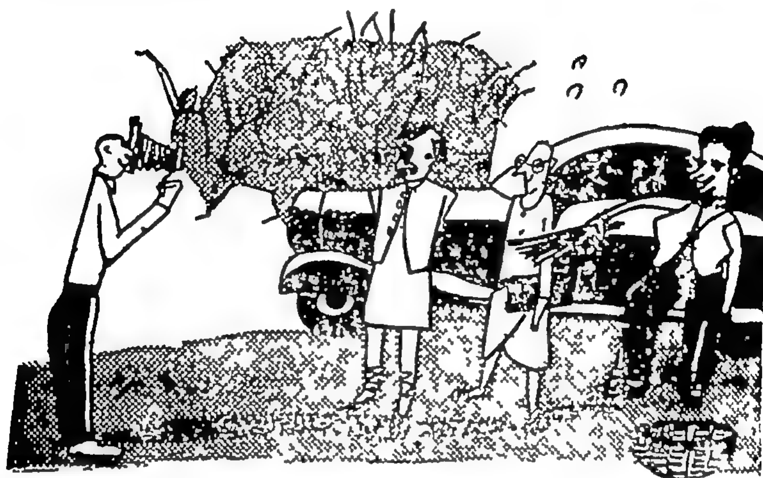
अब विमला गाती है। बाप हुक्का पी रहा है, मां पीढे पर बैठी, बेटी की ओर घूर रही है कि कहीं वह मेहमान को देख तो नहीं रही है मध्यम बारीक कण्ठ से विमला गा रही है—"गला हां गला काट लो गुलबदन, धीरे-धीरे।"

मेहमान गाना सुनते-सुनते कल्पना संसार में विचरने लगता है। वह

वेला—ओह, खूब ! तो चलिये ।

खद्दरधारी—यह झाड़ू आपके अर्पण है ।

बेला—(झाड़ू हाथ में लेकर) धन्यवाद !



खद्दरधारी—(कैमरे वाले से) अरे भई, मिस साहब का एक फोटो ले लो । और देखो, उद्घाटन के समय अच्छी तरह फोटो लेना ।

फोटो वाला—बहुत अच्छा साहब ! (कैमरा ठीक करता है) मिस साहब, तनिक मुस्कुराइये हो गया ।

वमन भाई—(कैमरा वाले को अलग ले जाकर) देखो भाई, उद्घाटन के समय मेरा अच्छा-सा फोटो लेना ।

[कोठी के बाहर इकट्ठे हुए दर्शकों, आने-जाने और किराए के टट्टुओं की आवाजें आ रही हैं, और तालियां व सीटियां बज रही हैं ।]

खद्दरधारी—मिस वेला वाटली वाला ! तशरीफ ले चलिये । जनता बड़ी बेचनी से आपकी प्रतीक्षा कर रही है ।

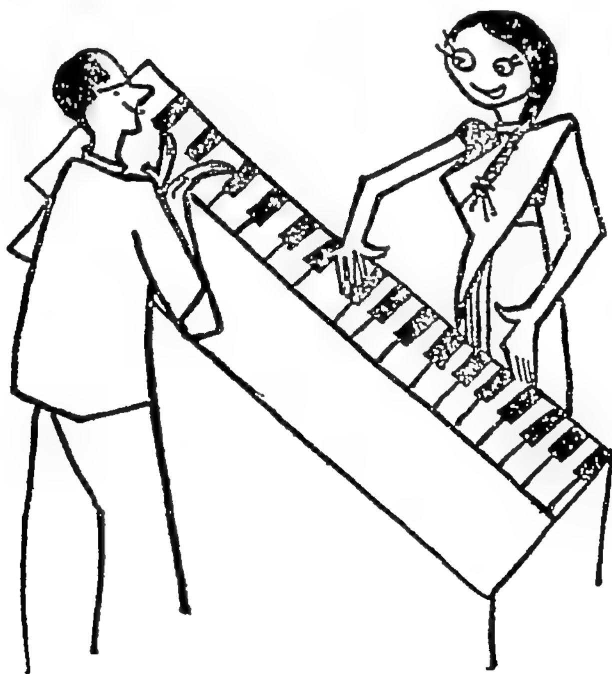
बेला—एलिजा, मेरा यह लिबास जरा ठीक करदे ।

[एलिज़ा बेला के वस्त्र ठीक-ठाक करती है । और बेला के पीछे

समझ में नहीं आता। अन्त में साहस बटोरकर पूछ ही लेता है—"वहिन विमला, इस दूसरी लाइन में 'ऊँ ऊँ' का क्या अर्थ है ?"

और वहिन विमला लजाकर कहती है—"मैंने फिल्म में ऐसे ही सुना था।"

मध्यम वर्ग से ऊपर गाने का रूप पूर्णरूप से वदल जाता है, रूप के साथ-साथ उसका शृंगार भी वदल जाता है। हारमोनियम का स्थान गुंवद की भांति गूंजता हुआ ऑर्गन (organ) ले लेता है—'यह मैंने वारह सौ रुपये में लिया था, कुछ इतना बुरा भी तो नहीं।' लजीली विमला के स्थान पर एक चचला चपला, रगीन होठ, वे-वाक निगाहें—"आप क्या सुनना पसन्द करेंगे ? ब्लियु डैन्यूब या ग्रेस मूर की मैलोडी ?



...अच्छा, आप पश्चिमी सगीत पसन्द नहीं कर पाते ? परन्तु सहगल तो कभी का पुराना हो गया"—ऑर्गन पर उंगलियां फेरते हुए "उस



देखता है कि कसाई तेज छुरी गर्दन पर रखे बैठा है, और नीचे बकरी मिमिया-मिमिया कर कहती है—'गला हाँ गला काट लो गुलबदन धीरे धीरे'। एक कसाई के लिए 'गुलबदन' की उपमा कितनी कोमल और कलात्मक है। इन कवियों का मस्तिष्क भी कितने अनोखे ढंग से काम करता है। मेहमान अभी यहा तक ही सोच पाता है कि विमला दूसरा गाना शुरू कर देती है—अब एक नई लय है—कोमल, करुण —

तुम मेरे तुम मेरे . मैं तेरी,
ऊँ ऊँ ऊँ।
तुम मेरे तुम मेरे .मैं तेरी,
ऊँ ऊँ ऊँ।

और मेहमान सोचता है इस 'ऊँ ऊँ' का क्या अर्थ है, परन्तु कुछ

रागनियों के नाम याद हों—चीज, कली, तान, खेरन, पल्टा और इसी प्रकार के अन्य दो-चार नाम। तबले की थाप पर बैठे-बैठे एकदम फड़क उठिए। लोग कहें 'बन्ने साहब भीम की गत क्या खूब बजा रहे हैं।" आप कहें, "नहीं साहब, हम तो तबले वाले की थाप पर मरे जाते हैं।' इसका परिणाम यह निकलेगा कि प्रत्येक सभा में लोग आपको शास्त्रीय



संगीत का उस्ताद और आचार्य मानने लग जाएंगे। प्रत्येक गायक आप ही की ओर हाथ नचा-नचाकर और आंखों में आंखें डालकर गाएगा 'तानी धानी पामागा धा तानीधा, 'तानीधा।' और आप फड़ककर कहेंगे 'वाह-वाह, चीज किस खूबी से उठाई है।'

है। खद्दरधारी चुरट पीते-पीते यहाँ तक पहुँचता है और कहता है—]

खद्दरधारी—प्यारे भारत-निवासियो! आज हमारे देश में घोर सकट का समय है। भंगियों ने हड़ताल कर दी है और शहर में कूड़े-करकट के ढेर लग गए हैं। यदि इस समय इस सकट को दूर करने का उपाय न किया गया तो भारत देश में हाहाकार मच जाएगा और कम्युनिस्ट इस देश में उपद्रव मचा देंगे। भाइयो और बहनो! इस कठिन अवसर पर कांग्रेस आपको सन्देश देती है कि बापू का नाम लेकर झाड़ू हाथ में लो और सारे शहर में भंगियों की हड़ताल तोड़ दो। यह देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है कि मिस बेला बाटलीवाला जैसी सुन्दर बाला और उच्च करोड़पति घराने की महिला इस काम में हाथ बँटा रही है। ये करोड़पति लोग भी हमारे भाई हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ये सब भाई हमारे साथ थे। और आज जब इस देश में झाड़ू फेरने का प्रश्न है तो भी ये लोग हमारे साथ हैं। और हम ऐसे कृतघ्न नहीं हैं कि इनका फिर भी साथ न दें, इनका सम्मान सहित आदर न करें। इसलिए सब बोलो, मिस बाटली-वाला की जय!

दर्शक—मिस बाटलीवाला की जय!

एक आवाज—ठहरो, ठहरो।

[फटा-पुराना लहगा और फटी हुई चोली पहने एक काली-कलूटी भंगिन कोठी के अन्दर से भागी हुई चली आ रही है। उसकी गोद में एक बहुत ही दुबला-पतला मरियल-सा बच्चा है। भंगिन आते ही बेला के पांव पर गिर पड़ती है।]

भंगिन—मालकिन! तुम यह काम न करो।

बेला—परे हट जा। (उसे ठोकर लगाती है। भंगिन उठ खड़ी होती है।)

रागनियों के नाम याद हों—चीज, कली, तान, खेरन, पल्टा और इसी प्रकार के अन्य दो-चार नाम। तबले की थाप पर बैठे-बैठे एकदम फड़क उठिए। लोग कहें 'बन्ने साहब भीम की गत क्या खूब बजा रहे हैं।" आप कहें, "नहीं साहब, हम तो तबले वाले की थाप पर मरे जाते हैं।' इसका परिणाम यह निकलेगा कि प्रत्येक सभा में लोग आपको शास्त्रीय



संगीत का उस्ताद और आचार्य मानने लग जाएंगे। प्रत्येक गायक आप ही की ओर हाथ नचा-नचाकर और आँखों में आँखें डालकर गाएगा 'तानी दानी पामागा धा तानीजा, नानीजा।' और आप फड़ककर कहेंगे 'वाह-वाह, चीज किस खूबी से उठाई है।'

पुरखों से सुना था कि गाना आत्मा का प्रसाद है, परन्तु इन तीनों प्रकार के गानों में से एक भी गाना ऐसा नहीं जो आत्मा को प्रेरणा प्रदान कर सके। तीनों वर्गों के लोग गाना केवल इस कारण सुनते हैं, कि यह सभ्यता की एक मांग और सभ्य होने का एक लक्षण है। उनके मस्तिष्क की पृष्ठभूमि में सदैव यह डर छिपा रहता है कि यदि उन्होंने गाने के प्रति अरुचि या उदासीनता का परिचय दिया, तो वे असभ्य और साहित्य और कला से अनभिज्ञ समझ लिए जाएंगे। इसीलिए तो मोटी तोंद वाले रईस, बड़ी मूंछों वाले नवाब, बातें बनाने वाले प्रोफेसर और मेज़ पर सिर झुकाकर लिखने वाले क्लर्क, सब-के-सब अपने को गाने के रसिया और संगीत का प्रेमी घोषित करते हैं।

परन्तु गाना एक और प्रकार का होता है, चौथे और अन्तिम प्रकार का। यहां न हारमोनियम होता है न सितार, न वायलिन न ऑर्गन। यहां न तानें बनाई जाती हैं, न पल्टे उठाए जाते हैं। एक छोटी-सी ढोलक होती है, और पचास-साठ मजदूर और उनकी पत्नियां और उनके बच्चे—'नजरिया तोरी पै बलिहार, नजरिया तोरी पै।' वे मिली-जुली, मोटी पतली, सुरीली-बेसुरीली आवाज़ों में गाते हैं। कोई गाते-गाते नाचने लग जाता है, कोई गाते-गाते हंसने लग जाता है। कोई



ढोलक बजाता है, कोई घुंघरू छनकाता है; और कोई मुँह से ताल देता है। चान्दनी चौक, पर खुला। उज्ज्वल आसमान है और कांसी के कटोरे सा चमकता चांद है। गाते हुए मजदूर, चमकता हुआ चाँद,

स्वतन्त्र परन्तु उल्लासपूर्ण रागिनी—मन को मुग्ध करने वाली, दिन-भर की थकान को हरने वाली। ज्ञानी लोगों ने सच ही कहा है—गाना आत्मा का प्रसाद है।

बेला—हाय मेरा फ्रांसीसी गाउन...मगर यह फोटो न लो। अरे, यह कैमरे में क्या करता है ?

[कैमरे वाला हँसता है।]



भगिन—क्या कहती है ? अब भी झाड़ू देगी ?

बेला—निकल जा, निकल जा अभी मेरी कोठी से।

भगिन—(सर पर झाड़ू मारकर) चली है हड़ताल तोड़ने। कलेजा चीरकर रख दूंगी जो फिर कभी झाड़ू हाथ में लिया तो।

भीड़ में से आवाजें—भगिन जिन्दाबाद !

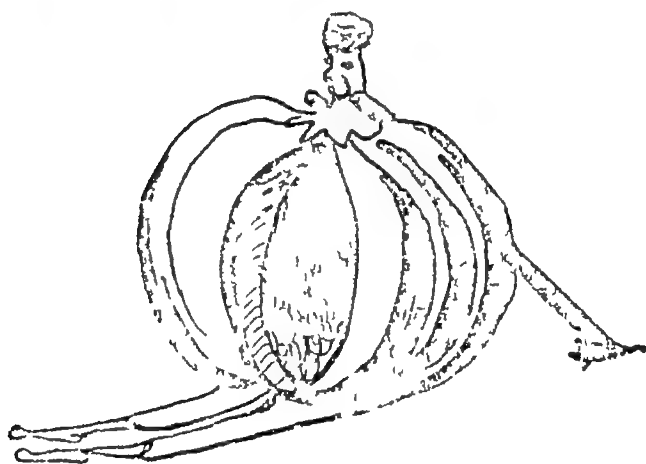
एक खद्दर की टोपी वाला—अरे जिन्दाबाद नहीं मुर्दाबाद कहो, नहीं तो मैं पैसे नहीं दूँगा।

भीड़ में से आवाजें—अरे कौन तेरे पैसे लेता है ? धर रख अपने पैसे। साला हड़ताल-तोड़, काला-चोर !

[दर्शक आवाजें लगाते हैं—'काला चोर मुर्दाबाद', 'काला चोर मुर्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद', 'भगिन जिन्दाबाद'। भगिन चारों ओर झाड़ू फेर रही है। कैमरे वाला हँसते-हँसते फोटो ले रहा है। लोग चीख रहे हैं। खद्दरधारी और वमन भाई का बुरा हाल है। बेला वहां से पोर्च की ओर भागती है।]

दका-सा रस होता है जिसमें पीले-पीले दाने कीड़ों की भाँति कुलबुलाते फिरते हैं। परमात्मा जाने लोग टमाटर कैसे खाते हैं!

लोग कहते हैं कि कद्दू में भी विटामिन होता है। कद्दू को देखकर मेरे मन में सदा किसी बनिए के फूले हुए पेट की स्मृति जाग उठती है। बढ़ा हुआ पेट, फूला हुआ पेट, सूद-दर-सूद पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, युद्धवाद—ये सारी कड़ियां जिन्होंने मानव-जाति के चारों ओर एक फौलादी जाल बुन रखा है, मेरे स्मृति-पटल पर उभरने लगती हैं। और मैं इनके निर्माण का सारा उत्तरदायित्व कद्दू पर रखता हूँ। प्रथम बात तो यह कि



यह बनिए के पेट की तरह इतना भोंडा होता है कि इसे खरीदने को जी नहीं चाहता। दूसरी बात यह कि इसका आकार इतना लम्बा-चौड़ा होता है कि न तो यह साग-भाजी की टोकरी में आ सकता है, न झोले में डाला जा सकता है। और न साइकिल के आगे लटकाया जा सकता है। अब इसके लिए और कोई छकड़ा लीजिए, या इसे तांगे की सवारी कराइये तब भी इसके गिरने का डर बना रहता है। इन सारे कष्टों के बाद घर लाकर इसे काटिए तो अन्दर से खाली! बाहर से यह जितना दिखाई देता है अन्दर से उतना ही थोथा होता है। केवल कुछ

विटामिन ११.

कहते हैं कि जीवन के लिए विटामिन उतने ही आवश्यक हैं जितना अंग्रेज के लिए नहर स्वेज। पहले-पहल विटामिन दो प्रकार का होता था—'ए' और 'बी' परन्तु अब तो विटामिन सारी वर्णमाला पर फैल गया है और यदि इसकी उन्नति को अब आगे न रोका गया तो इनके लिए एक नई वर्णमाला का निर्माण करना पड़ेगा।



संसार में मुझे जिन चीजों से घृणा है उनमें विटामिन भी सम्मिलित है। यही नहीं, वरन् मुझे उन सब चीजों से घृणा है जिनमें विटामिन बतलाया जाता है। जैसे करेले! कैसे कड़ुवे, कसैले होते हैं। आकृति देखिए—कैसी ऊबड़-खाबड़। मैला हरा रंग, सड़ा हुआ शरीर, जिस पर सहस्रों भद्दे दाग पड़े हुए होते हैं, मानो करेले को कोढ़ या चेचक हो गई हो। टमाटर भी विटामिन का साला बना फिरता है। ऐसा चार-सौ-बीस और धोखे बाज 'फल' आपको संसार भर में नहीं मिलेगा। आकृति भोली-भाली एक अबोध बालक की भाँति! लाल रंग, बिल्कुल कश्मीरी सेव या आलूबुखारा दिखाई देता है, परन्तु सूंघिये तो ऐसा लगता है मानो सात दिन से नहाया न हो। टमाटर न सेव जैसा मीठा है, न आलूबुखारे जैसा खट्टा। इसमें एक विलक्षण नमकीन, बक-

ऐसा लगता है मानो किसी ने चूहे को फांसी पर लटका रखा है। बीज इतने बेस्वाद होते हैं कि न खाए जा सकते हैं और न उगले जा सकते हैं। और उस पर भी यह दावा कि मैं विटामिनों से भरपूर हूँ। कभी-कभी यही सोचकर जी चाहता है कि विटामिन कहीं अकेला मिले तो कच्चा चबा लूं। पर वह किसी न किसी अन्य वस्तु में छिपा रहता है और इस तरह अपने प्राण बचाए रखता है।

भिंडी को भी आप जानते होंगे। हर दूसरे-तीसरे दिन मेज पर धरी होती है। रूखे-सूखे टुकडे—जैसे किसी भौंडी आन्त के कटे हुए टुकडे। यदि भिंडी को साबुत पकाया जाए तो इसकी चपचपाहट से मितली आने लगती है। यदि मांस में डालकर खाई जाए तो सारे शोरबे को लेसदार बना देती है। लोग इसे बड़े चाव से खाते हैं और हकीम-वैद्य प्राय निःसन्तान रोगियों को भिंडी खाने का परामर्श देते हैं ताकि भारत में जो तीस करोड़ चूहे बसते हैं उनमें कुछ और मरियल चूहे सम्मिलित हो जाएं। वास्तव में भिंडी के लेस से गोंद-दानियाँ भरी जातीं और भारत में एक नए उद्योग की नींव डाली जाती। परन्तु लोग हैं कि विटामिन और सन्तान-वृद्धि के चाव में भिंडी खाए जा रहे हैं।

जितनी घृणा मुझे तरकारियों से है उतना ही प्रेम फल से है। फलों में मुझे सेब, नाशपाती, अंगूर, सन्तरे बहुत पसन्द हैं। वर्षों तक मैं यही सोचकर फल खाता रहा कि इनमें विटामिन नहीं होते। परन्तु एक दिन एक डाक्टर साहब ने यह अशुभ समाचार सुनाया कि फलों में भी विटामिन होते हैं। लीजिए, विटामिन न हुए परमात्मा के प्रतिनिधि हो गए—जहाँ जाइए, जो खाइए, वे वहीं विद्यमान हैं।

जिस समय उपरोक्त डाक्टर महोदय ने यह बात बतलाई, उस समय संयोग से मैं सेब खा रहा था। मैंने उनसे कहा कि कृपा करके मुझे यह बता दीजिए कि विटामिन सेब के किस भाग में होते हैं ताकि मैं उस भाग को काटकर फेंक दूं और शेष सेब को शान्ति के साथ खा सकूं।

डाक्टर साहब ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर दिया—"सेब के छिलके में।

स्वराज्य के पचास वर्ष बाद ६.

(सन् २०१० में एक हिन्दुस्तानी नौजवान, जिसके पूर्वज स्वराज्य से बहुत पहले ब्राज़ील में जाकर बस गए थे, अपने देश वापस आया। डेढ दो साल यहाँ रहकर वह ब्राज़ील लौट गया। वहाँ जाकर उसने एक किताब लिखी—"स्वराज्य के पचास वर्ष बाद।" इस किताब का अनुवाद दुनिया की सब भाषाओं में हो गया है परन्तु भारत में उसके प्रकाशन पर प्रतिबन्ध है। यह लेख उसी किताब से लिया गया है।)

जब हमारा जहाज़ पटेलपुर, जिसे अंग्रेजो के शासन काल में बम्बई कहते थे, के बन्दरगाह में पहुँचा तो मेरे दिल में खुशी और उमगो का एक तूफान उमड आया। अपने प्यारे देश की झलक देखते ही मेरी आत्मा भावनाओं के आवेश से विकम्पित हो उठी और देश-प्रेम की भावना से मेरी आखो में आसू आ गए। समुद्र तट पर सगमरमर का बना हुआ एक भव्य द्वार था जिसके ऊपर दस झडे लहरा रहे थे—तिरंगा झडा, केसरी झडा, सफेद झडा, हरा झडा आदि आदि। गरज यह कि हर रग के झडे थे और ये सब राष्ट्रीय झडे माने जाते थे। परन्तु एक काले झडे को देखकर मुझे बडा आश्चर्य हुआ, क्योकि ब्राजील और अन्य देशो में काला झडा शोक का चिन्ह समझा जाता है। परन्तु मुझे बताया गया कि यह उन शहीदों का झडा है जिन्होने देश के लिए भूख हडताल करते हुए अपने प्राण दिए। एक और झडा भी था जिस पर कमल का फूल बना हुआ था। यह बगालियो का झडा था। बात यह है कि स्वराज्य मिलने के बाद ही भारत की संसद में राष्ट्रभाषा

ऐसा लगता है मानो किसी ने चूहे को फासी पर लटका रखा है। बीज इतने बेस्वाद होते हैं कि न खाए जा सकते हैं और न उगले जा सकते हैं। और उस पर भी यह दावा कि मैं विटामिनो से भरपूर हूँ। कभी-कभी यही सोचकर जी चाहता है कि विटामिन कहीं अकेला मिले तो कच्चा चबालूं। पर वह किसी न किसी अन्य वस्तु में छिपा रहता है और इस तरह अपने प्राण बचाए रखता है।

भिंडी को भी आप जानते होगे। हर दूसरे-तीसरे दिन मेज पर धरी होती है। रूखे-सूखे टुकडे—जैसे किसी भोंडी आन्त के कटे हुए टुकडे। यदि भिंडी को साबुत पकाया जाए तो इसकी चपचपाहट से मितली आने लगती है। यदि मास में डालकर खाई जाए तो सारे शोरबे को लेसदार बना देती है। लोग इसे बडे चाव से खाते हैं और हकीम-वैद्य प्राय नि सन्तान रोगियो को भिंडी खाने का परामर्श देते हैं ताकि भारत में जो तीस करोड चूहे बसते हैं उनमें कुछ और मरियल चूहे सम्मिलित हो जाएँ। वास्तव में भिंडी के लेस से गोंद-दानियां भरी जातीं और भारत में एक नए उद्योग की नींव डाली जाती। परन्तु लोग हैं कि विटामिन और सन्तान-वृद्धि के चाव में भिंडी खाए जा रहे हैं।

जितनी घृणा मुझे तरकारियो से है उतना ही प्रेम फल से है। फलो में मुझे सेव, नाशपाती, अंगूर, सन्तरे बहुत पसन्द हैं। वर्षों तक मैं यही सोचकर फल खाता रहा कि इनमें विटामिन नहीं होते। परन्तु एक दिन एक डाक्टर साहब ने यह अशुभ समाचार सुनाया कि फलो में भी विटामिन होते हैं। लीजिए, विटामिन न हुए परमात्मा के प्रतिनिधि हो गए—जहाँ जाइए, जो खाइए, वे वहीं विद्यमान हैं।

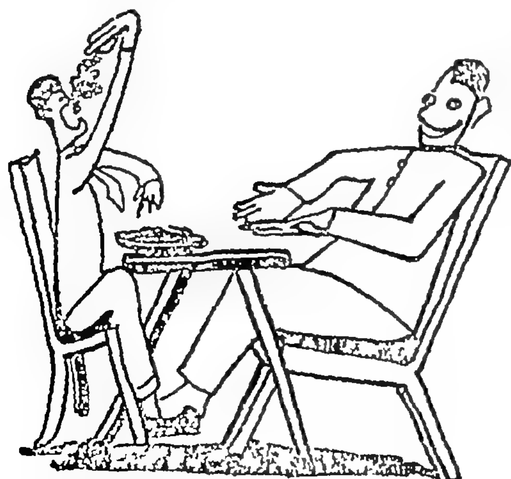
जिस समय उपरोक्त डाक्टर महोदय ने यह बात बतलाई, उस समय सयोग से मैं सेव खा रहा था। मैंने उनसे कहा कि कृपा करके मुझे यह दीजिए कि विटामिन सेव के किस भाग में होते हैं ताकि मैं उस को काटकर फेंक दूं और शेष सेव को शान्ति के साथ खा सकूं।

डाक्टर साहब ने गम्भीरता-पूर्वक उत्तर दिया—"सेव के छिलके में।

सेव को छीलकर नहीं, वरन् छिलके सहित खाना चाहिए।"

पहले तो मैं समझा कि डाक्टर साहब मजाक कर रहे हैं परन्तु फिर ज्ञात हुआ कि वे अक्षरशः ठीक कह रहे हैं। कहते हैं कि विटामिन खाने की वस्तु है और हमारे भोजन में उसका विद्यमान होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु परमात्मा की लीला देखिए कि यह प्राय पदार्थों के ऐसे भागों में पाया जाता है जो खाए न जा सकें। सेव का ही उदाहरण लीजिए—विटामिन सेव के गूदे में नहीं वरन् उसके छिलके में पाया जाता है। नाशपाती के भी छिलके में ही विटामिन पाया जाता है। सन्तरे के रेशों में, आम के रुएं में, अर्थात् फलों के उस भाग में होता है जो बे-स्वाद, कडुवा, कठोर और खराब होता है। अधिकतर वह भाग ऐसा होता है जो खाने के योग्य ही नहीं होता। विटामिन की गिरी हुई रुचि का इससे अधिक अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है?

नवीनतम वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला है कि विटामिन केवल फलों और तरकारियों में ही नहीं वरन् अन्न और दालों में भी पाया जाता है। परन्तु उनमें भी यह ऐसे-वैसे भागों में ही होता है। अर्थात् यह चावल में नहीं, चावल के खोल में होता है, और गेहूं में नहीं उसके छिलके में रहता है। इसीलिये डाक्टर लोग आग्रह करते हैं कि गेहूं के आटे से छान-भूर अलग न करो। हे करुणा-सागर, दया-निधान परम प्रभो!



अब मैं अपने यहां आने वालों की, जो विटामिन के भक्त

ग्रौर चाहने वाले होते है, बड़ी अच्छी तरह आवभगत करता हूँ। साग-भाजी के अतिरिक्त उन्हें फल भी खिलाता हूँ। स्वयं सेव का गूदा खाता हूँ और उन्हें उसका छिलका खाने को देता हूँ। स्वयं चावल खाता हूँ, और उनके लिये धान के छिलके उबालकर रखता हूँ। स्वयं आटे के नरम नरम पराठे खाता हूँ और छान-बूर की रोटी उनकी सेवा में उपस्थित करता हूँ।

आप को भी यदि विटामिन से प्रेम हो तो कभी सेवक के यहाँ दर्शन दीजिये। परमात्मा ने चाहा तो ऐसे-ऐसे विटामिन खिलाऊँगा कि मन सदा के लिये भर जाए। पता है—२७ तिलक रोड, पूना-३।

दवात और बही रखे एक चटाई पर बैठा था। मैंने अपना टोप उतार कर उसे सलाम किया। उसने कुछ देर तक मुझे घूरकर देखा, फिर बोला—

"तुम कहा से आए हो ?"

"ब्राज़ील से।"

"तुम्हारा पार-पत्र ?"

"पार-पत्र ?"

"हां, हां पार-पत्र, पासपोर्ट ?"

"ओह, यह रहा।"

"हूं, तुम भारतीय हो ?"

"जी हा" मैंने गर्व से उत्तर दिया।

"तुम यहा कितने समय तक ठहरना चाहते हो ?"

कितना अजीब सवाल था। मैंने कहा—

"मैं भारतीय हूं, और यहा ठहरने का मुझे पूरा-पूरा अधिकार है, चाहे छ. महीने रहूं, चाहे सारी उम्र यहीं बिताऊं।"

"नहीं . यह बात नहीं है। तुमने और तुम्हारे माता-पिता ने सारी उम्र भारत से बाहर बिताई है। तुम भारतीय सभ्यता और सस्कृति से अनभिज्ञ हो। इसलिए तुम यहा केवल छ महीने रह सकते हो।" उसने पासपोर्ट पर दस्तखत करते हुए कहा—"इससे अधिक ठहरने के लिए तुमको पटेलपुर के सर्वोच्च अधिकारी से प्रार्थना करनी होगी।"

मैंने विरोध प्रकट किया—"मैं भारतीय हूं, यहा ठहरना मेरा जन्म-अधिकार है।"

उसने मुस्कराकर कहा—"हर भारतीय, भारतीय नहीं होता। तुम चर्खा चलाना जानते हो ?"

"नहीं।"

"तकली फिराना ?"

"नहीं।"

घटनाओं को तोड-मरोड सकता है—उन्हे अपनी इच्छा के अनुसार ढाल सकता है। यदि वह नायक से नाराज़ हो जाए तो उससे आत्महत्या करा सकता है, उसे विष दे सकता है, पहाड की चोटी से गिराकर पार कर सकता है अथवा किसी के हाथो उसका गला कटवा सकता है। परन्तु यदि आप किसी पुस्तक की भूमिका लिख रहे हैं तो आप उस पुस्तक के लेखक को किसी ऐसी बात के लिये विवश नहीं कर सकते। आप उसकी रचना का एक शब्द भी इधर से उधर नहीं बदल सकते। आप अपनी कहानी जब चाहे फाड डालें, परन्तु यदि आपको किसी पुस्तक की भूमिका लिखनी हो तो आप उसके साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते।

ज्यो-ज्यो मैं भूमिका लिखने की कला का अध्ययन करता हूं मुझे यह कला अथाह समुद्र की भांति लगने लगती है। भारतीय सगीत की भांति भूमिका-लेखन का आदि और अन्त ज्ञात नहीं हो सकता। मुझे इसकी गहराई और नि सीमता से डर लगता है। परन्तु जब मैं देखता हूँ कि साहित्य के समुद्र में जिस अमूल्य मोती को मैं ढूंढ रहा हूँ वह मुझे नहीं प्राप्त होगा, और जब मैं देखता हूँ कि हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ विचारक और साहित्यकार वे लोग हैं जिन्होने आयु-पर्यन्त भूमिका लिखने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं किया तो मैं और भी संलग्नता और तन्मयता के साथ भूमिका लिखने में व्यस्त हो जाता हूँ। आप चाहे कितने ही उच्चकोटि के कवि, उपन्यासकार, नाटककार एव गल्पकार हों, आपको कोई पूछेगा भी नही। परन्तु यदि आप एक भूमिका लिख दें तो साहित्य-जगत् में आपका नाम नक्षत्र की भांति चमक उठेगा। हर साहित्यकार आपकी प्रशसा में धरती और आकाश एक कर डालेगा और आपसे मिलने, बात करने और अपनी नई पुस्तक की भूमिका लिखवाने के लिए सिर-तोड कोशिश करेगा। नेतागिरी के बाद ... लेखन ही एक ऐसी कला है जिससे कोई व्यक्ति हमारे देश में ... कीर्ति एव ख्याति प्राप्त कर सकता है। और फिर भूमिका-लेखन के लिये कोठी की आवश्यकता है और न कार की।

भूमिका-लेखन-कला। १२.

जिन दिनों मै कहानियां लिखा करता था, गल्प-कला को साहित्य की समस्त शाखाओ में सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक कठिन समझता था। भूमिका लिखने के सम्बन्ध में तो मेरी धारणा थी कि यह सबसे सरल साहित्यिक कृति होती है। साहित्य आलोचना के दो-चार गुर लो, उनमें दो-चार विख्यात साहित्य-समालोचकों के कुछ सुन्दर वाक्य जोडो, और 'कल्पना', 'शैली', 'परिपाटी', 'कला' आदि शब्दो को बीच-बीच में दोहराते जाओ, बस एक बढिया भूमिका तैयार हो गई। इसी धारणा के कारण मैं 'भूमिका-लेखकों' को 'साहित्यिक मुफ्त-खोरे' कहा करता था।



अब कुछ दिनो से मेरा ध्यान गल्प लिखने से हटकर भूमिका लिखने की कला की ओर प्रवृत्त हो रहा है। और अब मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह काम इतना सरल नहीं है जितना मैं समझता था। यहा नहीं, वरन् अब मेरा यह विचार है कि कहानी लिखने का काम भूमिका लिखने से कहीं अधिक सरल है। गल्प लिखने में गल्पकार अपने भावो से जिस तरह चाहे खेल सकता है। वह जिस तरह चाहे

के लिये भूमिका-लेखक को सदा तैयार रहना चाहिये। इस प्रकार भूमिका-लेखक केवल अपने परम-कर्तव्य का ही पालन नहीं करता, वरन् वह जनता की सेवा भी करता है। आज का युग संघर्ष और मुकाबले का है। जीवित रहने के लिये साधारण लोगों को इतना परिश्रम और भाग-दौड करनी पडती है कि वे साहित्य के अध्ययन के लिये अधिक समय नहीं निकाल सकते। वे उपन्यास छोडकर छोटी कहानिया पढते हैं, रग-मंच के स्थान पर सिनेमा से मन वहलाते है और समाचार-पत्र पढने के स्थान पर रेडियो से समाचार सुनकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। और अब वह दिन भी दूर नहीं कि वे पुस्तक पढने के स्थान पर केवल उसकी भूमिका पढा करेंगे।

भूमिकाए कई प्रकार की होती है। एक वे जो लिखी जाती हैं, एक वे जो लिखी नहीं जातीं। दूसरी प्रकार की भूमिकाओं में वे भूमिकाए सम्मिलित हैं जिनको पुस्तक के लिखने वाले सज्जन स्वय लिखकर उन पर किसी का झूठा अथवा काल्पनिक नाम दे देते है। अथवा यह भी होता है कि किसी भूमिका पर किसी व्यक्ति का नाम उसकी अनुमति के विना ही दे दिया जाता है। पिछले दिनो एक सज्जन को जो कैम्वल-पुर में दर्जी हे अपनी अप्रकाशित कहानियो के लिये एक भूमिका की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने झट से अपने एक मित्र को पत्र लिख दिया। वह मित्र एक विख्यात 'भूमिका-लेखक' को जानता था। मित्र ने 'भूमिका-लेखक' से तो भूमिका न लिखवाई, वरन् अपने मित्र को कैम्वल-पुर लिख भेजा कि वह स्वय एक भूमिका तैयार कर ले और उसमें जो जी चाहे लिख ले और उस पर 'भूमिका-लेखक' सज्जन का नाम दे दे। परन्तु परमात्मा का धन्यवाद है कि समय पर उसे सारी वात का ज्ञान हो गया और उसने स्वय एक छोटी-सी भूमिका लिखकर पीछा छुडाया। परन्तु यह तो एक सयोग था, अन्यथा ऐसी स्थिति में साधारणतया यह [illegible] है कि भूमिका-लेखक को भूमिका के सम्बन्ध में तव ज्ञात होता है [illegible] पुस्तक छपकर उसके हाथ में पहुंच जाती है। और जब वह भूमिका

"शराब पीते हो ?"

"हां, ब्राजील में तो आम चलन है। इसके बिना खाना हजम नहीं होता।"

"हां खूब याद आया।" उसने कहा, "तुम खाना मेज पर बैठकर खाते हो, या धरती पर ?"

"मेज़ पर बैठकर, छुरी कांटे से।"

"हूँ छुरी कांटो से।" उसने वही में लिखते हुए कहा — "अच्छा अब अपना सामान दिखाओ।"

थोड़ा-सा सामान था। उसने कुछ मिनटों में देख लिया। एक सूट केस के कोने में उसे कुछ छुरियां-कांटे मिल गए। उसने इन्हें उठा कर समुद्र में फेंक दिया—"ये अहिंसा के कानून की लपेट में आते हैं। अब तुम जा सकते हो।"

× × ×

जिस हिन्दुस्तान का जिक्र मेरे दादा मुझे सुनाया करते थे, वह तो दुनिया के पर्दे से मिट ही गया था। अब तो उसकी जगह 'भारत' था। मेरे दादा को, जो साम्यवादी थे और स्वराज्य मिलने से बहुत पहले देश से निकाल दिए गए थे, अपने देश को आजाद देखने की लालसा आखरी दम तक सताती रही थी। लेकिन मेरे पिता को शुरू से ही राजनीति से अरुचि थी। उन्हें राजनीति के बजाए खेती-बाड़ी से ज्यादा दिलचस्पी थी। इसलिये उन्होंने भारत जाने की कभी न सोची। मुझे भारत जाने का इच्छुक पाकर बोले "अच्छा भई जाओ। अपने ...रे देश के दर्शन कर आओ। परन्तु मैंने सुना है कि अब देश बहुत ... चुका है। वहां तुम अपने को अजनबी महसूस करोगे।"

अजनबी—मैं हैरान हूँ कि देश की मौजूदा हालत का कैसे विश्लेषण करूं ? यह इतना अजीब और अनोखा देश है कि मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या यह वही हिन्दुस्तान है जिसके बारे में मेरे दादा इतनी अच्छी-अच्छी बातें सुनाया करते थे और जिसके उज्ज्वल भविष्य के बारे में

लडकी प्रियम्वदा से बातें कर रहा था। प्रियम्वदा बड़ी चचल है। (उसकी शरारतो के सम्बन्ध में कुछ मनोरजक घटनाओं का उल्लेख) इतने में श्रीमती जी मुस्कराती हुई अन्दर आई। मेरी धर्मपत्नी को मुस्कराने और पान खाने की बहुत बुरी आदत है। (श्रीमतीजी के सम्बन्ध में कुछ



वाक्य) मेरी जीवन-सगिनी ने मुझे अग्निहोत्री जी का एक पत्र लाकर दिया जो अभी-अभी डाकिया दे गया था। मसूरी में डाक का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है। बिजली और गरम पानी का प्रबन्ध भी अच्छा नहीं है। (बिजली, गरम पानी और मसूरी की म्युनिसिपल कमेटी के सम्बन्ध में एक पृष्ठ) मैंने पत्र खोलकर पढा। अग्निहोत्री जी की शैली सचमुच बड़ी मनोरजक है। पत्र पढकर मैं बहुत प्रसन्न

में यह वाक्य पढता है—"श्री श्याम कॅम्वलपुरी की कहानिया विषाद, करुणा और पीडा के भावो में डूबी हुई है। गल्पकला की दृष्टि से ये हमें मुन्शी प्रेमचन्द की कोटि के कलाकार दिखाई देते है।"—तो भूमिका-लेखक के मन में उस समय जो भाव उठते है उसका अनुमान कुछ वही लोग लगा सकते है जिनका रुपया वंक से किसी जाली हस्ताक्षर वनाने वाले ने हथिया लिया हो।

साधारण नियम यह है कि पुस्तक के लेखक और भूमिका के लेखक दो विभिन्न व्यक्ति होते है। परन्तु जैसा कि हमने ऊपर वताया, कभी-कभी पुस्तक का लेखक स्वय भूमिका-लेखक भी वन जाता है। यह वह ऊंचा स्तर है जहाँ दुई मिट जाती है और पुस्तक भूमिका में और भूमिका पुस्तक में लीन हो जाती है। परन्तु यह काम वडी जोखिम का है। इसे करने का वही साहित्यकार साहस कर सकते है जो अध्यात्मवाद के ऊँचे स्तर पर पहुँच चुके हो।

भूमिका साधारणतया दो तरह से लिखी जाती है—(१) पुस्तक पढ़कर, और (२) विना पुस्तक पढे। पहली रीति को केवल वही भूमिका-लेखक काम में लाते है जो अपने काम के नौसिखिये हों। परन्तु जो अनुभवी और दक्ष भूमिका-लेखक है वे कभी पुस्तक नहीं पढते। यही नहीं, वरन् वे प्राय पुस्तक के नाम, लेखक के नाम और पुस्तक में क्या लिखा है—इन सव वातों से भी अनभिज्ञ होते है। किसी और वात में न सही, परन्तु भूमिका-लेखन की कला में तो नि सन्देह हम पाश्चात्य देशों से आगे निकल गए है।

मै ऊपर वता चुका हूँ कि किसी अच्छी भूमिका के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसका पुस्तक के विषय से कोई सम्बन्ध हो। उदाहरण के तौर पर यदि आपको श्री चन्द्रभानु अग्निहोत्री के नए काव्य 'महान् आकाक्षा' पर भूमिका लिखनी हो तो आप उसे इस तरह प्रारम्भ कर सकते है:—

"मै मसूरी में अपनी कोठी 'तारिका' में बैठा हुआ अपनी नन्ही

अग्निहोत्री जी यदि इसी प्रकार उन्नति करते रहे तो निःसन्देह एक दिन साहित्य रूपी आकाश में सूर्य बनकर चमकेंगे।"

सेवक—रामचन्द्र द्विवेदी

'तारिका', मसूरी
१०-८-१९४२



देखा आपने? इस ढंग से आप बीस-पच्चीस पृष्ठों की भूमिका सरलता के साथ लिख सकते हैं, और अमर ख्याति प्राप्त कर सकते हैं। कई पुस्तकों में आपने देखा होगा कि भूमिका पुस्तक का तीन-चौथाई भाग होती है और मूल पुस्तक एक चौथाई भाग। परन्तु इस कला को इतनी ऊंचाई पर पहुंचाने के लिये बड़े अभ्यास, सहनशीलता और परिश्रम की आवश्यकता है।

भूमिका में उस स्थान का नाम जहां भूमिका लिखी गई हो, बहुत महत्त्व रखता है उपरोक्त भूमिका के अन्त में 'मसूरी' का नाम भूमिका के स्तर एवं महत्त्व को बहुत ऊंचा उठा देता है। इसके विपरीत यदि आप 'तारिका' मसूरी के स्थान पर 'चगड मुहल्ला, लाहौर,' 'बाजार माई सेवा, अमृतसर' या 'खारी बावडी, देहली, लिखें तो भूमिका दो कौडी की हो जाएगी और न कोई उस पुस्तक को पढेगा और न आपकी

उसने डरते-डरते मुझे सारा हाल यूं सुनाया।—

"बात यह है कि भारत के आजाद हो जाने के बाद जनता को महात्मा के चमत्कार में और उसके अवतार होने का पूरा-पूरा विश्वास हो गया। वे विश्वास करने लगे कि यह परमात्मा का भेजा हुआ महात्मा है, जिसकी बात टालना महापाप है। महात्मा के बाद उसके चेलों ने जिन्हें हम सरदार कहते हैं, इस मत को बहुत फैलाया। और अब तो रासराजेन्द्र से परशोत्तम पर्वत तक, हर आदमी इसी धर्म का पुजारी है। अब इस भारत में न कोई हिन्दू है न मुसलमान, न सिक्ख न ईसाई, न जैनी और न बौद्ध। अब तो हर आदमी अपने को महात्मा का भक्त कहलवाता है।"

शायद इसी कारण मैंने भारत में मन्दिर, मस्जिद और गुरुद्वारे केवल कहीं-कहीं देखे। आह! यदि आज मेरे दादा जीवित होते तो इस दृश्य को देखकर कितने प्रसन्न होते। हाँ, एक बात अवश्य है कि गांवों में और शहरों में जगह-जगह पर मन्दिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों के बजाय शानदार इमारतें बनी हुई हैं। इन्हें 'चर्खा-गृह' कहा जाता है। इनमें सुबह-शाम भक्तों का एक जमघटा-सा लगा रहता है। चर्खा-गृह के ठीक बीच में सोने-चांदी या किसी बहुमूल्य लकडी का बना हुआ एक चर्खा स्थापित होता है, जिसे लोग आकर बारी-बारी से चलाते हैं और पुण्य कमाकर लौट जाते हैं। आस्था रखने वाले चर्खा-गृहों में जाकर प्रार्थनाएँ करते हैं, चढावे चढाते हैं। चर्खे के महापुजारी गंडे और तावीज भी बेचते हैं और यह व्यापार बडी उन्नति पर है। जैसे ईसाई औरतें

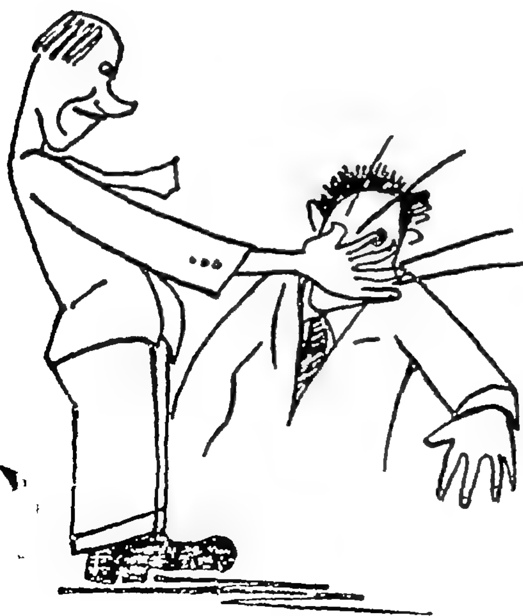


जान-पहिचान वाले

१३.

अनजानो और शत्रुओ को छोडकर मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो मित्र—अर्थात् केवल मित्र, सिर से पाव तक मित्र, बेतकल्लुफ, बेहया, और बेशर्म मित्र। इनसे मिलकर चित्त सदा प्रसन्न होता है, क्योंकि एक तो ये हमारे ही रग में रगे होते हैं और दूसरे इन्हीं के सहारे जीवन बिताना होता है।

दूसरे प्रकार के लोग वे होते हैं जिन्हें अंग्रेजी में 'एक्वेन्टन्स' और हिन्दी में 'जान-पहचान वाले' कहा जाता है। सच तो यह है कि मुझे इन 'जान-पहचान वालों' से अत्यधिक घृणा है।



यद्यपि ये लोग आपको कभी-कभी मिलते हैं, परन्तु जब भी मिलते हैं, आपको इतनी कोफ्त होती है कि जी चाहता है, इनके मुंह पर एक तमाचा जडकर कहा

भूमिका को। इसलिये भूमिका और पुस्तक की सफलता के लिये अपनी कल्पना के विस्तार को बढाए। यदि आप देहली में रहते हैं तो भूमिका के नीचे 'सन्नी व्यू, गुलमर्ग' लिखिये, अमृतसर में हो तो 'ग्लेशियर व्यू, मसूरी' लिखिये, और पटना में हों तो 'लेक व्यू, नैनीताल' लिखिये। मैं कहता हूँ कि मसूरी और गुलमर्ग भी आप क्यों लिखें? आप बेधड़क लिखें—'मेग्ररी मार्वलिन कालिज, आक्सफोर्ड', 'स्ट्रीट फोर्ड-ग्रॉन-ग्रावन, इग्लैंड'। आपकी भूमिका को चार चाद न लग जाए तो कहना।

यह जो कुछ मैंने लिखा है यह वास्तव में मेरी उस पुस्तक की भूमिका है जो मैं 'भूमिका-लेखन-कला' पर लिख रहा हूँ। यह पुस्तक हिन्दी निकेतन, मद्रास से प्रकाशित होगी। मूल्य २॥) प्रति। डाक-व्यय खरीदार के जिम्मे। दीवाली, क्रिसमस और स्वतन्त्रता-दिवस के अवसरों पर यह पुस्तक आधे मूल्य में बेची जाएगी। अभी से आर्डर दे दीजिये, अन्यथा दूसरे सस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

कि यदि तुम उनके सगे भाई नहीं हो तो चचेरे भाई से किसी प्रकार कम नहीं हो। इतना हर्ष, इतनी हार्दिक प्रसन्नता और स्नेह दिखाते हैं कि तुम्हें विश्वास हो जाता है कि यदि यह कम्बख्त आज मर गया तो कम से कम आधी सम्पत्ति तुम्हारे नाम अवश्य लिख जाएगा।



इसलिए मैंने रवीदत्त से कहा—"टिकिया खाइए!"

"नो, नो, थैंक्यू" कहकर आप साथ वाली कुर्सी घसीटकर मेरे निकट बैठ गये और टिकिया उड़ानी शुरू कर दी। टिकिया खाते-महकने लगे—"यार, तुम से मिलकर कितना हर्ष हुआ है, कितनी प्रसन्नता हुई है। क्या बताऊँ कितने समय के बाद मिले हो! अरे भाई, दो टिकिया और देना, गर्मागर्म।"

यह पाजी मुझे 'यार' कहता है! मुझे आत्मग्लानि का अनुभव

महीना पीने के बाद लड़ाई करने को जी ही नही चाहता, हा आत्म-हत्या करने को अवश्य मन करता है। शायद इसी कारण भारत में



आत्महत्या करने वालों की संख्या पहले से तीन गुनी हो गई है। किसान धान की खेती नहीं करते, बल्कि बकरियाँ पालते हैं और बकरियो पर ही नेताओं के जलूस निकालते हैं। घनी आबादी वाले प्रदेश वे हैं, जहाँ खजूर बहुत होते हैं, जैसे राजपूताना। काश्मीर और उसके आस-पास के प्रदेशों में जहाँ न सतरे होते हैं न खजूर, अब केवल कुछ जगली आदिवासी बसते हैं, जो फाके करते हैं या खट्टे सेब, आलूचे खाकर दिन काटते हैं। लेकिन इनका भारत में प्रवेश मना है।

हर सोमवार को यहाँ 'मौन दिवस' मनाया जाता है। उस दिन समस्त भारत मौन रहता है। कोई किसी से बात नहीं करता। इशारो से एक-दूसरे को अपनी बात समझाते हैं या कागज-पेंसिल की सहायता से काम चलाते हैं। घर के पालतू जानवरो, जैसे कुत्ते, बिल्ली, तोता, मैना, घोड़े, गधे, बैल, बकरी आदि का मुँह किसी कपड़े से बाँध दिया जाता है जिससे शाति में विघ्न न पड़े और मौन व्रत भग न हो।

भारत के अपने दौरे में मैंने यह महसूस किया कि भारतीयो का अहिंसा के मत में अटल विश्वास है। यह सुन्दर मत उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। परन्तु मुझे हैरानी तो इस बात से हुई कि किस प्रकार बाहर से देखने पर इस बोदे मत ने भारत की जटिलतम समस्याओं को सुलझा कर रख दिया है। जब मैंने अपने दादा के बूढे

कि यदि तुम उनके सगे भाई नहीं हो तो चचेरे भाई से किसी प्रकार कम नहीं हो। इतना हर्ष, इतनी हार्दिक प्रसन्नता और स्नेह दिखाते हैं कि तुम्हें विश्वास हो जाता है कि यदि यह कम्बख्त आज मर गया तो कम से कम आधी सम्पत्ति तुम्हारे नाम अवश्य लिख जाएगा।



इसलिए मैंने रवीदत्त से कहा—"टिकिया खाइए!"

"नो, नो, थैंक्यू" कहकर आप साथ वाली कुर्सी घसीटकर मेरे निकट बैठ गये और टिकिया उड़ानी शुरू कर दी। टिकिया खाते-त कहने लगे—"यार, तुम से मिलकर कितना हर्ष हुआ है, कितनी प्रसन्नता हुई है। क्या बताऊँ कितने समय के बाद मिले हो! अरे भाई, लो टिकिया और देना, गर्मागर्म।"

यह पाजी मुझे 'यार' कहता है! मुझे आत्मग्लानि का अनुभव

हुआ । मूर्ख, प्रोफेसरो का पिछलग्गू मुझे अपना यार कहता है। यद्यपि वास्तविकता केवल इतनी है कि वह बी० ए० में मेरे साथ पढता था, न नमस्ते न बोलचाल। मैं केवल इसकी शक्ल से ही इसे जानता था वरना बी० ए० में तो मैंने इस जैसे क्षय-रोगियो से सम्बन्ध ही न रखा था। पर अब तो मेरा ही दोष था। न मैं सडक पर बैठकर टिकिया खाता और न यह नौबत आती।

"दो टिकिया और देना।" रवीदत्त ने तीसरा प्रहार किया। और बोला—"यार क्या बताऊँ, तुमसे मिलकर कितनी खुशी हुई है। भला कितने वर्ष हुए होगे तुमसे मिले हुए, तीन कि चार ?"

मैंने मन में कहा—"हे भगवान्" तेरी लीला तू ही जाने। तूने इसकी शक्ल या तो बी० ए० में दिखाई थी या फिर आज इस मनहूस शक्ल को मेरे सामने लाया है।" फिर भी मैंने मुस्कराते हुए रवीदत्त से कहा—"शायद चार वर्ष बाद।"

"हाँ, हाँ, ठीक याद आया, चार, पूरे चार।" रवीदत्त ने मेरी बात का पुष्टिकरण किया और साथ ही मुझ पर चौथा प्रहार भी कर दिया, "देखो, चार टिकिया और देना, खूब गर्म हो।"

+ + + +

यह तो एक साधारण-सी घटना है वरना जुकाम और जान-पहचान वाले लोग—यही तो वे बीमारियाँ हैं जिनका प्रामाणिक इलाज आज तक किसी वैद्य या डाक्टर ने मालूम नहीं किया। इस अवसर पर मुझे विक्रमसिंह याद आता है। कम्बख्त अहमद ने भूल से एक बार मेरा और उसका परिचय करा दिया था। अब उसका फल मुझे भोगना पडता है कि मेरी और विक्रमसिंह की भेंट किसी गली के मोड पर, किसी बाजार के नाके पर या किसी सिनेमा के टिकट घर पर हो जाती है। अभिवादन के पश्चात् सदा यही सम्वाद होता है—

"अख्खाह, आप है ?"

"ओ हो, किधर जा रहे है ?"

"कभी-कभी मिलते तो रहा कीजिए।"

"दर्शन तो होते रहते हैं आपके।"

"ही-ही-ही !"

"हा-हा-हा !"

"अच्छा धन्यवाद !"

"धन्यवाद।"

चले जाते हैं और मैं सोचता हूँ कि आखिर मनुष्य इतने मूर्ख क्यो हैं कि सिनेमा थियेटर देखते हैं ? यहा इस ससार के स्टेज पर हर समय कोई न कोई शेक्सपीयर, कालिदास और आगा अपना नाटक प्रस्तुत करते ही रहते हैं।

कभी किसी सिनेमा के द्वार पर एक साहब से भेंट होती है—

"हैलो, हैलो।"

"हैलो, हैलो।"

"क्या आप लाहौर ही में हैं ? (मानो विश्वास नहीं आता) मैं समझा था (देवदास का सा ऐक्टिंग करके) कि आप लाहौर से बाहर चले गये हैं ?" अब कोई इनसे पूछे कि यह तुमने कैसे समझ लिया कि मैं लाहौर से बाहर चला गया था। "आप बी० ए० में पढते हैं ?" आज से दो वर्ष पहले इसी सिनेमा के द्वार पर मिले थे और बिल्कुल यही बातें की थीं।

मैं बडी कठिनाई से संयम रखकर उत्तर देता हूँ—"नहीं जी ! मैंने बी० ए० तो दो वर्ष हुए पास कर लिया था। आजकल मिन्टो पार्क में गडेरियां बेचता हूँ।"

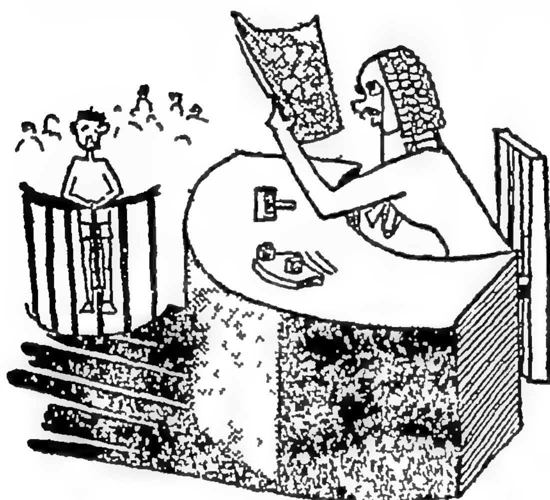
"ओह—ठीक याद आया। क्षमा करना ओह अच्छा फिर भेंट होगी। मैं आजकल चगड मुहल्ले में रहता हूँ। कभी पधारिये न, सफाचट लाडरी के निकट।"

+ + + +

मेरी जान-पहचान के एक और भलेमानस हैं। उनकी और मेरी

का आरोप नहीं लगाया जा सकता।"

भारत ने अपनी सुरक्षा के लिए सेना और पुलिस को रखना आवश्यक नहीं समझा। और सच तो यह है कि देश की इन परिस्थितियों में ये दोनों विभाग अनावश्यक ही मालूम होते हैं। यहां मैंने किसी को लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। जज और वकील सारा दिन बेकार बैठे रहते हैं और तकली फिराते रहते हैं। कभी कोई दंगा फसाद नहीं होता। लोग एक-दूसरे से मिलते समय हाथ जोड़ लेते हैं और मुस्कराते हैं। अगर किसी से नाराजगी हो जाए तो उसे कुछ नहीं कहते, बल्कि आप ही भूखा रह कर प्रायश्चित कर लेते हैं। देश में कपड़े के कारखाने कभी के बन्द हो गए हैं और हाथ का बुना कपड़ा सारे देश के लोगों के लिए काफी नहीं होता। इसलिए करोड़ों लोग अर्धनग्न फिरते हैं। लोग ऐश आराम, भोग-विलास को तनिक पसन्द नहीं करते। इन लोगों ने अपने घरों से फर्नीचर आदि निकाल कर कभी के जला डाले हैं। ये लोग धरती पर सोते हैं, सदा सच बोलते हैं और दिन-रात परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते हैं। बाजारों में बकरियां मिमियाती फिरती हैं और अपने मालिकों के लिए सौदा-सुलफ गले में बंधवा कर ले आती हैं।



स्त्रियों के आदर-सत्कार के सम्बन्ध में भारतीय सारी दुनिया से

आकर मैं आत्महत्या करने वाला ही था कि भगवान को कुछ दया आ गई। एक दिन उन्हे एक तार मिला कि उनका वह सम्बन्धी और मेरा सहपाठी इस ससार से चल बसा।

सच मानिए, मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि चलो मुक्ति मिली मुझे भी और मरने वाले को भी। कुछ दिन चैन के कटे, क्योंकि ये साहब मरने वाले के यहा शोक प्रकट करने गये थे। परन्तु लौटते ही फिर वही बक-बक, "अजी, वह आपको बहुत याद करता था, अपने सब मित्रो को याद करता था। बड़ा ही नेक लडका था।"

क्या विडम्बना है कि लोग मरने वालों को भी नहीं बख्शते। उनके नाम पर क्या-क्या बातें घडी जाती हे। इन साहब ने भी कोई कसर नहीं छोडी। जब वह मरा—

१ उसने अपने सब मित्रों को याद किया। (चाहे बेचारे को हिचकी लेने का भी अवसर न मिला हो और वह हृदय-गति बन्द हो जाने से चल बसा हो।)

(२) जी, मरने के बाद उसकी सूरत तनिक नहीं बिगडी। बस ऐसा लगता था कि अभी-अभी सोया है—आंखें तनिक-सी खुली हुई थीं।

(३) अजी, उसे अपने मरने का पता था। छ महीने पहिले ही से वह उदास रहने लगा था। न किसी के साथ हँसना, न बोलना, न खेलना—मानो उसे मौत सामने खडी दिखाई देती हो। ओफ, अन्तिम बार जब वह मिला था! पिछले साल की बात है, वह मुझे स्टेशन पर छोडने आया था, तो सहसा मुझ से पूछ बैठा—'क्या बजा होगा?' मैंने कहा—'साढ़े आठ' कहने लगा—'साढे आठ, ओफ साढ़े आठ। गाडी अभी तक नहीं आई। मुझे इजाज़त दो, मै चलता हूं। बहुत देर हो गई है।' और यह कहकर वह चला गया। उस समय उसके चेहरे पर एक अजीब-सी उदासी थी। उस दिन मैं इसका मतलब न समझ सका था।"

मैंने तग आकर कहा—"मगर इसका उसके मरने से क्या सम्बन्ध?"

"सम्बन्ध" उन्होंने विस्मित होकर कहा—"साहब सम्बन्ध यह है कि

जान-पहचान केवल दो वाक्यो तक सीमित है। उनसे भेंट यद्यपि बहुत संक्षिप्त होती है, परन्तु अत्यन्त शिष्टतापूर्वक। पहले तो वे दूर ही से मुस्कराना शुरू कर देते है, जिसके उत्तर में मुझे भी मुस्कराना पडता है। मैं यह बात आज तक नहीं समझ सका कि वे मुस्कराते क्यो है? निकट आने पर वे हाथ मिलाते हैं और फिर—

"कुशल तो है?"

"आपकी कृपा है।"

इसके पश्चात् कुछ क्षण फिर मुस्काते है और—"एम० ए० में पढते है न?"

"जी हा।"

मुस्कराते है और चले जाते है। वर्षों से भेंट हो रही है। कभी और कोई बात नहीं हुई, मुझे तो पागल मालूम पडते है।

कहा तक गिनाऊ! मेरे साथ के कमरे में एक बाबूजी रहते थे। मेरा परिचय केवल इतना था कि वह कभी मुझ से ब्लेड उधार ले लिया करते थे, और मैं उनसे पैन की स्याही माग लिया करता था। इसके अतिरिक्त उनका एक निकट सम्बन्धी था, जो एफ० ए० में मेरे साथ पढ चुका था। बस, मेरी तो शामत आ गई। मैं ज़रा कमजोर दिल का आदमी हूँ। लडाई-झगडा पसन्द नहीं करता। पाच साल होटल की रोटिया खाकर अन्त में मेरे मस्तिष्क ने अहिंसा की नीति को अपना लिया है। अब मुझ में इतना साहस ही नहीं कि उनसे कह सकूं—'भाई साहिब आप क्यों मेरा मग़ज चाट रहे हैं, भगवान् के लिए कमरे से बाहर तशरीफ ले जाइये।'

उनकी और मेरी रुचि में कोई मेल नही। मैं सिनेमा पसन्द करता हूँ, वे थियेटर पर फिदा है। इसलिए बातचीत का विषय बस एक रह गया है—उनका वह सम्बन्धी जो कभी मेरे साथ रहता था। और जाने कैसे उन्हें विश्वास हो गया था कि मुझे इस विषय पर बातचीत करना बहुत प्रिय है। बस, उठते-बैठते उसी की चर्चा, उसी का उल्लेख। तग

घूँघटमें गोरी जले

१४.

"घूंघट में गोरी जले .. ।"

हरियाणे का जाट दिल्ली की सडक पर यह गीत गाता हुआ जा रहा था। मस्त, मदभरी आंखो में यौवन की प्यास और जोश लिये हुए। 'घूंघट में गोरी जले"—मैं गीत का यह टुकडा सुनकर ठिठक गया। सोये हुए मन के अंधियारे में यह पंक्ति विद्युत् की भांति कौंध गई और मैंने देखा कि गोरी का अलौकिक सौन्दर्य घूंघट की रेशमी सलवटो में



दीपक की लौ की भांति जल रहा है और हरियाणे के इस जाट की आंखों को चकाचौंध किये दे रहा है।

पर दूसरे देश हमला नहीं करते, यद्यपि भारत के पास न फौज है न हथियार। शायद इसका कारण यह है कि दूसरे देशों के लड़ाकू लोग इस प्रतीक्षा में है कि ये भारतीय, अपने ब्रह्मचर्य व्रत के हाथो इस दुनिया से बैकुण्ठ सिधार जाएँ और तब वे इस सूने देश में आकर बस जाएँगे। जो चीज़ थोड़ी प्रतीक्षा से प्राप्त हो सकती है और बिना लड़े-झगड़े मिल सकती है, उसके लिए क्यो खून बहाएँ ?

दो साल से कम ही समय तक घूम कर, मैं ब्राजील लौट आया। मेरा जी अपने उस प्यारे देश से बहुत जल्द भर गया, जहाँ कोई किसी से प्रेम नहीं करता, जहाँ लड़ाई-झगड़े नहीं होते, जहाँ सब सच बोलते है, बकरी का दूध पीते है और लंगोट बान्ध कर ईश्वर-भजन करते है।

यहां चीटियो के टीले है, भौंडी आकृति की छिपकलियां है और झींगुर है। परन्तु सडक पर चलते हुए अचेत प्राणी इन घडियालों की आवाज सुनकर भी नही चेतते और अपनी धुन में गाते हुए चले जाते हैं—"प्रीत करो तुम प्रीत, ऐ सजनी ।" पजाबी जाट ने औरत के काले लहँगे की ओर देखा और हरियाणे के जाट ने घूंघट वाली गोरी को देखा और दोनो को तुरन्त प्रेम हो गया। यह क्या बात है ?

जान पडता है कि भारत देश को प्रेम का रोग है। इस सडक की रगें भारत के कोने-कोने में फैली हुई है। इसीलिये पिछली दो जन-गणनाओं में भारत (अविभाजित) की जन-सख्या दस करोड बढ गई। क्षेत्रफल वही है, सीमाएँ वही है, धरती वही है, आकाश वही है, परन्तु जन-सख्या दस करोड बढ गई है। और फिर भी रेडियो हर घडी हर घर में यह सन्देश देता रहता है—प्रीत करो तुम प्रीत, ऐ सजनी । धोबी के लडके से रेडियो तक, भारत की हर चीज—चाहे वह चेतन हो अथवा जड और चाहे मनुष्य हो अथवा पशु—प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। ज्यो-ज्यो इसकी तीव्रता बढती जाती है, भारत की जन-संख्या भी बढती चली जाती है। और अन्त में वह दिन भी आएगा जब इस स्वर्गादपि गरीयसी पुण्य-भूमि भारत में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिल सकेगा—न रोटी, न पानी, न कपडा, न घर। बस, चारों ओर प्रेम ही प्रेम होगा।

प्रकट और बाह्यरूप से तो हमारे देश में प्रेम को कोई विशेष महत्त्व प्राप्त नहीं है, और प्राय इसे चोरी, हत्या और डाके की तरह घृणित समझा जाता है और उन्हीं की भांति दण्डनीय भी। परन्तु वास्त-व बात यह है कि भारत में प्रेम के बिना किसी व्यक्ति का एक क्षण के लिये भी निर्वाह नहीं हो सकता। घरो में, बाजारो में, गली-कूचों में, खेतों में, कारखानों में, दफ्तरो में—साराश यह कि इस देश के चप्पे-चप्पे पर प्रेम के चर्चे है।

हमारे देश में कवि-सम्मेलनो में बारह वर्ष के लडके से लगाकर सत्तर

पतंगा अब सड़क पर बहुत दूर निकल गया था। उसकी आवाज मध्यम हो चुकी थी और नशा हल्का। मैं जहां खड़ा था अब वहां निकट से ही आवाज आई—कुछ पंजाबी मजदूर, जो तांगे बनाने वाले ठेकेदार के कारखाने से काम करके वापिस आ रहे थे, सड़क पर गाते जा रहे थे—

"काली तित्तरी, काली तित्तरी कमादो निकली,
ते उडदी नूं बाज पै गया,
ते उडदी नूं बाज पै गया।"

गन्ने के खेत से निकली हुई, काला लहँगा पहने हुए! काला लहँगा और गोरी-गोरी बाहें। स्याही और सफेदी का सम्मिश्रण! और फिर बाज की झपट! परन्तु ये बाज भी तित्तरियों की घात में सड़क पर चपल गति से उड़ते चले गये।

जब मैं राजपुर रोड पर मुड़ा तो एक युवक धोबी पीठ पर मैले कपड़ों की गठरी उठाए मुझसे टकरा गया। वह एक गीत गाता हुआ बेसुध, मस्त चला आ रहा था—"प्रीति करो तुम प्रीति, ऐ सजनी! प्रीत करो तुम प्रीत!" और उसके बाद यह टक्कर—अर्थात् प्रेम और एक क्लर्क की टक्कर! क्लर्क ने पराजय स्वीकार की और सड़क के दूसरे छोर पर हो लिया। धोबी का लड़का गुनगुनाता हुआ आगे बढ़ गया—'प्रीत करो तुम प्रीत, ऐ सजनी '

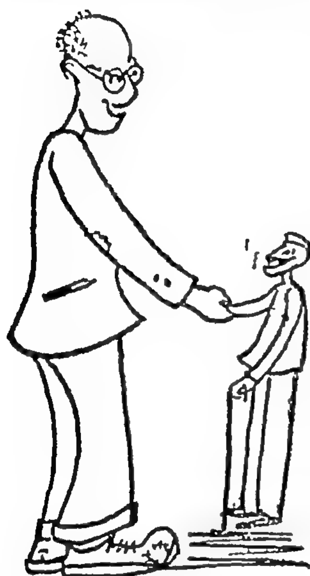
मैं सोचने लगा—इस सड़क पर प्रेम की इतनी बाढ़ क्यों आई हुई है। नंगी, आवारा सी सड़क है, न जाने किधर जा रही है, कहाँ समाप्त होती है? दोनों ओर नीम के रूखे-रूखे पेड़ खड़े हैं। परन्तु जो भी इस सड़क पर से जा रहा है प्रेम के गीत अलापता जा रहा है। सड़क के एक ओर कब्रिस्तान है, परन्तु उसे देखकर भी किसी को वैराग्य नहीं होता, किसी में अध्यात्मवाद नहीं जागता। इस कब्रिस्तान में टूटी-फूटी कब्रें हैं, बेर की झाड़ियां हैं, भूरे फूलों वाले पौधे हैं जो अपने भूरे फूलों और काले कांटों का झाड़ चारों ओर फैलाये हुए हैं।

इस प्रकार के विज्ञापन केवल समाचार-पत्रों की ही शोभा नहीं बढाते, वरन् जहां जाग्रो, वहीं इनकी भरमार है। दूकानो ग्रौर मकानो की दीवारो पर, स्टेशनो पर, बिजली के खम्भों पर, किसी भी नगर, गांव अथवा बस्ती का कोई स्थान ऐसा नहीं जहां प्रेम की कला से सम्बन्धित विज्ञापन दिखाई न देते हो। 'वशीकरण मन्त्र', 'पीर जी की करामात', ग्रादि भारत देश की विशेष उपज है। जान पडता है कि यहां के लोगो को न ट्रैक्टरो की ग्रावश्यकता है, न खाद की उपज बढाने के लिये नये-नये वैज्ञानिक ग्रौजारो ग्रौर उपायो की। यदि उन्हे किसी वस्तु की ग्रावश्यकता है तो वह केवल वशीकरण मन्त्रो ग्रौर पीर जी की करामात—ग्रथवा दूसरे शब्दों में केवल प्रेम—की है।

प्रेम का पहला नियम यह है कि किसी भी वस्तु से प्रेम किया जा सकता है। स्त्रियों को ग्रपने पति, बच्चों ग्रौर मायके से तो ग्रथाह प्रेम होता ही है, साथ ही उन्हें ग्रपने घर के ग्रांगन में लटकी हुई पुरानी रस्सी ग्रौर स्नान-घर में पडे हुए टूटे-फूटे लोटे से भी गहन प्रेम होता



है। वे सब यह समझते हैं कि मैं कम से कम ढ़ाई सौ रुपए अवश्य कमाता हूँ। ये इसका उल्लेख बडी ईर्ष्या पूर्वक करते हैं, जिसे सुनकर जी तो जल ही जाता है परन्तु एक प्रकार के उल्लास का भी अनुभव होता है। बाजार में चलते-चलते कोई पुराना मित्र मिल जाए, बडे स्नेह



पूर्वक गले मिले और इसके पश्चात्, "यार सुना है कि तुम प्रोफेसर हो गए हो। (सुना है, जैसे विश्वास नहीं आता) यार सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। (प्रोफेसर मैं हुआ, प्रसन्नता आपको हुई) यार खूब ऐश करते हो ना। (खुदा तुम्हे गारत करे) ढाई सौ रुपए पाते हो। तनिक मेरी ओर देखो, खडड-बडड कम्पनी में पैंतीस रुपए पाता हूँ, एक बीवी है, बच्चे हैं, जान आफत में है। तुम तो ऐश करते हो—दो-ढाई स रुपए महीना।'

कहना यह कि यार लोग ढाई सौ रुपयों का उल्लेख इस शुभ कामना और विश्वास से करते हैं कि बहुधा मुझे भी भ्रम-सा हो जाता है कि वास्तव में मेरा वेतन इतना ही है। परन्तु जब महीने की पहली तारीख आती है तो यह सुन्दर भ्रम, टुकडे-टुकडे हो जाता है।

कुछ लोगो ने मेरी शिक्षा सम्बधी योग्यता के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण अपना रखे हैं और मेरी हज़ार कोशिशो पर भी इन दृष्टिकोणों को त्यागने के लिए तैयार नहीं। गांव वाले तो विशेष रूप से यह विश्वास कर बैठे हैं कि ससार भर के ज्ञान-विज्ञान का मैं ज्ञाता हूँ। यदि किसी को आपरेशन कराना हो, किसी का मुकदमा हो, किसी की पत्नी भाग गई हो, वह तुरन्त लाहौर आकर मुझ से परामर्श करता है



और न जाने किस-किस अला-बला से प्रेम होता है।

प्रेम का एक नया मैदान पिछले कुछ वर्षों से हमारे लिये खुल गया है अर्थात् सिनेमा-अभिनेत्रियां। जितना रुपया हम लोगों ने कुछ ही वर्षों में फिल्म-अभिनेत्रियों से प्रेम करने में व्यय कर डाला है उतने रुपये से सारे राजपूताने की धरती को सींचने के लिये नहरें खोदी जा सकती थीं, हवाई सेना के कई स्क्वाड्रन तैयार हो सकते थे, और तपेदिक की रोक-थाम के लिये बीस बड़े-बड़े हस्पताल खोले जा सकते थे। परन्तु प्रेम हमें इन बातों के लिये अवकाश ही कब देता है?

हवाई महल १५.

'हवाई महल', 'ख्याली पुलाव' की कोटि का शब्द है। अन्तर केवल इतना है कि 'ख्याली पुलाव' हिन्दुस्तान की 'भूख' की ओर सूक्ष्म-सा इशारा करता है और इसका क्षेत्र केवल 'पेट' तक सीमित है। परन्तु 'हवाई महल' एक विस्तृत और व्यापक शब्द है और इसमें ख्याली पुलाव ही नहीं बल्कि कई एक और आकर्षक चीजें शामिल हैं जिनके अस्तित्व से हिन्दुस्तानी अभी तक अपरिचित हैं। एक और बात ध्यान देने योग्य है। 'ख्याली पुलाव' में हवाई महल नहीं समा सकते, लेकिन हवाई महल में बैठकर 'ख्याली पुलाव' मजे से पकाए जा सकते हैं। यदि सोचा जाए तो इस लिहाज से सारा हिन्दुस्तान एक हवाई महल मालूम होता है।

क्या आपने कभी हवाई महल बनाए हैं? मैं बचपन की बात नहीं करता, जब कि सारी जिन्दगी ही एक हवाई महल मालूम होती थी। माँ की गोद में जा बैठे और ऊंघते-ऊंघते एक दम चिड़िया बनकर 'फुर' से बाग में सेब के सफेद-सफेद फूलों पर जा बैठे और वहाँ से चोंच निकाल-कर भयभीत हो कहने लगे—"देखो देखो, अम्मा मैं कितनी ऊँची जगह जा बैठा हूँ। और अम्मा हँसकर पड़ोसिन से कहती है—"कितना ोल है—मेरी गोद में बैठा है और सपने में समझता होगा कि कितने ऊँचे पर जा बैठा है—नटखट कहीं का।" और फिर प्यार से थपक कर—'सोजा मेरे नन्हें, तुझे चारपाई पर सुला दूँ।'

और तुम्हारा हवाई महल धम से गिर जाता है।

दे रहा हूं जुगराफिया का पर्चा बहुत बुरा हुआ है। पास होने की कतई उम्मीद नहीं है। आप खान बहादुर रिच को तो जानते होंगे। अगर उनसे मिल-मिला कर काम हो जाए तो ?"

मैंने मन में सोचा, 'कहां मैं और कहां खान बहादुर रिच। सिफारिश करना तो दूर, मैंने उन्हें देखा भी नहीं।' मगर जैसा मैंने पहले कहा, मैं कायर आदमी हूँ, इसलिए मैंने झट से कह दिया—"यह तो बहुत मामूली सी बात है। खान बहादुर रिच को तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूं। कल ही तो मेरे यहां चाय पीने आए थे। क्या अच्छा होता कि आप कल आ जाते। खैर, कोई बात नहीं।"

"खुदाया तेरा लाख-लाख शुक्र।" शेर खां बिलौच ने गरज कर कहा—"तो आप उन से मिलेंगे न, मेरा रौल नम्बर लिख लीजिए, नम्बर ३६ है। ३६, भूलिएगा नहीं।"

"कभी हो सकता है ? " मैंने कहा ३६ नम्बर मुझे अच्छी तरह याद रहेगा, लिखने की क्या जरूरत। हां कल ही खान बहादुर से कह दूंगा।

"अच्छा तो मैं चलता हूं।"

"वाह साहब, अभी आए और अभी चल दिए ? एक-दो दिन तो ठहरते।"

"जरूर ठहरता, जरूर ठहरता" शेर अली खां ने उठते हुए कहा, "मगर कल दूसरा परचा है, फिर कभी हाजिर होऊंगा।"

शेर अली खां चले गए और बात आई गई हो गई, कम से कम मेरे मस्तिष्क से तो यह बात बिल्कुल निकल गई। परन्तु एक रोज क्या हुआ कि रात के ठीक ग्यारह बजे किसी ने जोर जोर से द्वार खडखडाया मैंने किवाड खोले। देखा शेर अली खां थे।

"आइये, आइये" मैंने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा।

शेर अली खां ने वहीं खडे-खडे कहा—"मैं उसी बात के लिए हाजिर हुआ हूं, कहिये कुछ बना ?"

हो रहे होते हो कि यह मेरा इतना ऊंचा भाई क्या कर रहा है और इसकी आंखों पर वह दो गोल-गोल सी चीजें क्या चमक रही हैं, कि वह तुम्हें सहसा धरती से इतना ऊंचा उठा लेता है कि तुम्हे लगता है तुम आकाश से जा मिले। वह तुम्हे हवा में उछाल देता है और तुम डर जाते हो। फिर वह बाहे फैलाकर तुम्हे लपककर गोद में ले लेता है और तुम खुशी में खिलखिलाने लगते हो। तुम्हे देखकर वह स्वयं भी खिलखिलाने लगता है। वह तुम्हे गुदगुदाता है और तुम जोर-जोर से हंसना शुरु कर देते हो, जिस पर वह तुम से भी ज्यादा जोर-जोर से हंसने लगता है। हंसी का शोर सुनकर घर के लोग इकट्ठे हो जाते है, और सब मिलकर बडे भाई पर हंसते हैं और वह लज्जित-सा होकर तुम्हे झट जमीन पर उतार देता है और अपने पढ़ने के कमरे में चला जाता है।

अब तुम इन ईंटो से दिन भर खेलते हो। तुम बडे भाई की ऐनक उतार लेते हो और उसे एक गाय बनाकर बहन की चोटी से बांध देते हो, तुम बडी बहन को साबुन के झाग से भरे टब में डाल देते हो, वह चिल्लाती है, तुम खुश होते हो और खिलखिलाकर हंस पडते हो। आंगन में एक ओर कोने में बैठी हुई अम्मा तुम्हे देख-देख मुस्कराती है और फिर तकली पर सूत चढ़ाकर उसे घुमाती है। इतने में वह पहली ईंट, जिसे तुम कौवा समझते हो, तुम्हारे हाथ से बिस्कुट छीन ले जाती है और तुम क्रोध में आकर उसे दीवार से हटाकर एक ओर फेंक देते हो और मुंह बिसूरने लग जाते हो। और अम्मा कहती है "अभी हंसते थे, अभी ऊं-ऊं करते हो।"

नहीं नहीं, मैं बचपन के हवाई महलो की बात नहीं करता। मैं तुमसे लडकपन और जवानी और बुढ़ापे के हवाई महलो की बात पूछता हूं। बचपन की जिन्दगी तो विस्मय और हैरानी का एक अटूट सिलसिला थी। पिता जी के हुक्के से लेकर कुनीन की पुड़िया तक, हर चीज सुन्दर दिखाई पड़ती थी। तुम एक मिट्टी की गुड़िया में जान डाल

या रेंगते-रेंगते आंगन में आगए, दीवार के साथ तीन-चार ईंटें लगाईं—'एक तो है काला कौवा! वह, जो मुंडेर पर बैठकर अपनी भयानक आवाज़ में चिल्लाया करता है और तुम्हे जब कभी अकेला पाता है, नन्हें-मुन्हें हाथो से बिस्कुट झपट कर ले जाता है। दूसरी ईंट निसन्देह ही तुम्हारी बडी बहन है जो हर समय तुम्हें चूमने पर उतारू रहती है और तुम्हें मीठी भी लगती है और खट्टी भी—मीठी उस समय जब खेलते-खिलाते, हंसते-हंसाते तुम्हें एक साथ गले से लगा लेती है और तुम्हें अजीब-अजीब प्यारे-प्यारे नामों से बुलाती है, और खट्टी उस समय जब नहलाने के लिए वह तुम्हें पानी से भरे टब में डाल देती है। निश्चय ही तुम्हें पानी पसन्द नहीं। आखिर तुम ज़मीन पर चलने वाले जानवर हो न कि पानी की मछली। और फिर वह साबुन का नमकीन झाग जो नाक के कोमल नथनो में, आंख के पपोरों के भीतर पहुंच कर मिर्च सी लगा देता है। फिर किस निर्दयता से वह एक खुरदरे से तौलिये से तुम्हारे छोटे से शरीर को रगडती है, यहां तक कि वह लाल हो जाता है। और इस क्रिया के दौरान में वह बराबर गुनगुनाए जाती है। और फिर कोई थोडा-सा खुशबूदार तेल लेकर तुम्हारे छोटे से सिर पर इस ज़ोर से मालिश करती है कि तुम्हे लगता है तुम्हारा कोमल-सा सिर टुकडे-टुकड़े हो जाएगा। तुम यह भी सह जाते हो पर वह इस पर भी बस नहीं करती, बल्कि लकडी की एक छेपटी-सी लेकर बार-बार तुम्हारे घुघराले बालो में फेरती है यहां तक कि पीडा के मारे तुम बिलबिला उठते हो, और हैरान होते हो कि वह मीठी बहन कहां गई और यह कौन है जिसे तुम्हें रुलाने में आनन्द आता है।

तीसरी ईंट तुम्हारा सबसे बडा भाई है। वह तुम्हें कभी-कभी दिखाई देता है। अक्सर उसके हाथ में एक मोटी-सी किताब होती है और आंखो पर एक चमकती हुई ऐनक। वह तुम्हे उस समय प्यार करता है जब तुम बिल्कुल अकेले होते हो। पहले वह इधर-उधर देख लेता है कि आस-पास कोई नहीं है, और तुम अभी मन-ही-मन में हैरान

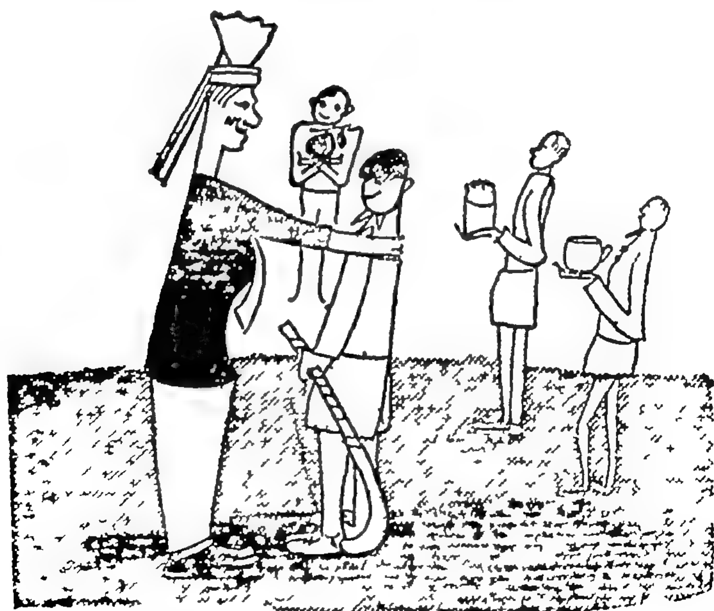
उस मास्टर को पलक झपकते ही नीचे उतार लाते हो। और फिर वह तुमसे कभी कोई सवाल नहीं पूछता।

यकायक तुम्हें चेतना हो जाती है, और मालूम होता है कि तुम उसी मोटे ठिगने हिसाब पढ़ाने वाले मास्टर के सामने बेंच पर बैठे हो, उसने तुमसे शायद कोई सवाल पूछा है परन्तु तुम उसका जवाब देने में असमर्थ हो। और जवाब दे भी किस तरह सकते हो जबकि तुम एक सुन्दर हवाई महल बनाने में संलग्न थे, जिसमें तुमने उस मास्टर को एक खजूर के पेड़ पर उलटा लटका दिया था।

तुम जवाब नहीं दे पाते।

वह फिर तुम्हारे कान को अपनी उंगलियों में लेकर मसलने लगता है।

या फिर खेल के मैदान में खेलते-खेलते तुम्हें यकायक अनुभव होता है कि तुम स्कूल के सबसे अच्छे खिलाड़ी बन गये हो। तुम हाकी खेल



दे रहा हूँ जुग़राफिया का पर्चा बहुत बुरा हुआ है। पास होने की कतई उम्मीद नहीं है। आप खान बहादुर रिच को तो जानते होंगे। अगर उनसे मिल-मिला कर काम हो जाए तो ?"

मैंने मन में सोचा, 'कहाँ मैं और कहाँ खान बहादुर रिच। सिफारिश करना तो दूर, मैंने उन्हें देखा भी नहीं।' मगर जैसा मैंने पहले कहा, मैं कायर आदमी हूँ, इसलिए मैंने झट से कह दिया—"यह तो बहुत मामूली सी बात है। खान बहादुर रिच को तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। कल ही तो मेरे यहाँ चाय पीने आए थे। क्या अच्छा होता कि आप कल आ जाते। खैर, कोई बात नहीं।"

"खुदाया तेरा लाख-लाख शुक्र।" शेर खाँ बिलौच ने गरज कर कहा—"तो आप उन से मिलेंगे न, मेरा रौल नम्बर लिख लीजिए, नम्बर ३६ है। ३६, भूलिएगा नहीं।"

"कभी हो सकता है ? " मैंने कहा ३६ नम्बर मुझे अच्छी तरह याद रहेगा, लिखने की क्या जरूरत। हाँ कल ही खान बहादुर से कह दूंगा।

"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

"वाह साहब, अभी आए और अभी चल दिए ? एक-दो दिन तो ठहरते।"

"जरूर ठहरता, जरूर ठहरता" शेर अली खाँ ने उठते हुए कहा, "मगर कल दूसरा परचा है, फिर कभी हाजिर होऊँगा।"

शेर अली खाँ चले गए और बात आई गई हो गई, कम से कम मेरे मस्तिष्क से तो यह बात बिल्कुल निकल गई। परन्तु एक रोज क्या हुआ कि रात के ठीक ग्यारह बजे किसी ने जोर जोर से द्वार खडखडाया मैंने किवाड खोले। देखा शेर अली खाँ थे।

"आइये, आइये" मैंने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा।

शेर अली खाँ ने वहीं खडे-खडे कहा—"मैं उसी बात के लिए हाजिर हुआ हूँ, कहिये कुछ बना ?"

बजता है, पिता हर्ष से गले लगा लेते हैं और वह छोटी-छोटी आंखों वाला लड़का जो क्लास में प्रथम रहता है, तुम्हें ईर्ष्या भरी दृष्टि से देख रहा है।



परन्तु दूसरे दिन जब नतीजा निकलता है तो तुम्हारी क्लास के हर लड़के को पता चल जाता है कि तुम केवल अपने पिता के रसूख और असर से पास हुए हो।

× × ×

आह, मैं तुमसे जवानी के हवाई महलों का हाल कैसे पूछूं? वे महल कितने सुन्दर होते हैं—सीप की मोतियों की भांति। कितने कोमल होते हैं—पानी के बुलबुलों के समान, कितने प्यारे होते हैं—प्रेमिका के नयनों की नाईं। उनकी पेंगें तुम्हें आकाश के बुर्जों में पहुंचा देती हैं, परन्तु दूसरे ही क्षण धरती की धूल में ला पटखती हैं। ये मन में सोई हुई रागिनियों को जगा देते हैं। भावनाओं के रुके हुए सोतों को मचलती हुई धारा के रूप में प्रवाहित कर देते हैं, और विकल, विकम्पित और तृषित भावनाओं को बिजलियां बना देते हैं।

निर्माण भी किया है। तुमने अपनी श्यामल प्रेमिका को चमेली के फूलों सी सुन्दर बना दिया है। अपनी पिछड़ी हुई जाति को यकायक ससार की सब से उन्नत जातियो की कोटि में ला विठाया है। अपने निर्धन देश के झण्डे को इतना ऊँचा उठाया है कि विश्व की समस्त विस्तृतता उसकी छाया तले आ गई। अपने टूटे-फूटे झोपडे की जगह एक जग-मगाता हुआ हीरे, लाल और जवाहरात का महल बनाया है। तुमने सयम द्वारा अपने चरित्र को इतना ऊँचा उठाया है कि मानव जाति ने एक मत होकर तुम्हे अपना नेता स्वीकार किया। तुम ससार के सब से बडे कवि, साहित्यिक, कहानीकार, राजनीतिज्ञ, सैनिक, दार्शनिक और सुधारक कहलाए और अमर ख्याति का मुकुट तुम्हारे मस्तक पर धरा गया।



लेकिन इन सब बातों के होते हुए जब तुम्हारी आँख खुली तो तुम एक छोटे से दफ्तर में तुच्छ से क्लर्क थे। तुम्हारा वेतन भी तुच्छ था। तुम्हारे माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे, और तुम्हारे पल्ले एक चिडचिडी और बेहद वफादार बीवी बांध गए थे। प्रेम के स्रोते सूख गए, फूंस के झोंपडे भी राख हो गए और तुम और तुम्हारा देश दोनो, दिनोदिन और अधिक निर्धन और गरीब होते गए।

परन्तु यह सब कुछ होने के बाद भी हवाई महल बनते रहे। जवानी के बाद बुढापा आया। अब पिछले महल सब ढह चुके थे। अपने लिए कुछ नहीं रहा। अब दूसरो की ओर ध्यान दिया। बूढ़े बाप ने महल बनाए अपने जवान बेटे के लिए, बूढी मां ने अपनी कल्पना के विकम्पित

नम्बर हैं। तुम इसके बीस नम्बर किसलिए बढ़वाना चाहते हो ? क्या उसे यूनीवर्सिटी में अव्वल कराना चाहते हो ? मैंने कहा कि खान बहादुर, आप को मेरी खातिर इसे २० नम्बर और देने ही होंगे। कितनी बड़ी भूल हो गई।

"फिर अब ?" शेर अली खाँ ने पूछा।

"आप बिल्कुल फिक्र न करें।" मैंने उसे ढारस बधाते हुए कहा—"कल ही खांन बहादुर के यहां जा कर उन्हें यह गल्ती बताऊंगा और उस लड़के के बीस नम्बर काट कर आप को दे दिए जाएंगे।"

शेर अली खाँ चला गया और मैं फिर इस घटना को भूल गया। एक महीने बाद अचानक शेर अली खाँ का खत आया। वह पास हो गया था। उसने मेरा बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया था।

शेर अली खाँ की घटना के बाद तो लोगो को पूर्ण विश्वास हो गया कि यूनीवर्सिटी वाले मेरे खरीदे हुए गुलाम हैं। मैं जो चाहूं, उनसे करा सकता हूं। इसलिए इसके कुछ समय बाद ही मेरे मामा जी मुझ से मिलने आए। बातो बातो में कहने लगे कि इस साल अपने प्रकाश चन्द्र ने मैट्रिक की परीक्षा दी है। अंग्रेजी और हिसाब में पर्चे अच्छे नहीं हुए हैं। वैसे तो क्लास में काफी अच्छा है पर मुझे डर है कि कहीं फेल न हो जाए। इसलिये तनिक उसका ध्यान रखना है। परचे देखने वालों से मिल कर ।"

"हाँ, हाँ।" मैंने सिर हिला कर बड़े जोश और विश्वास के साथ ।—"आप तनिक चिन्ता न करें। प्रकाश को आप बस पास समझिए।"

इसके पश्चात् मामा जी के अनेको पत्र आए और हर एक पत्र में वाक्य होता था—"मैंने वह बात जो लाहौर में आप से कही थी, उसका ध्यान रखना।" इस बार मामी जी का स्नेह भी विशेष रूप से मेरे लिए उमड़ा। उन्होंने भी कई पत्र लिखे और हर पत्र के अन्त में मुझे अपने और प्रकाशचन्द्र के सम्बन्ध का ज्ञान कराया, "प्रकाशचन्द्र तुम्हारा भाई ही है, उसका ध्यान अवश्य रखना। यदि तुम ने उसको पास न कराया तो मैं सारी उम्र तुमसे न बोलूगी।"

रोना

१६.

कहावत प्रसिद्ध है कि गाना श्रौर रोना किसे नहीं श्राता। कहने को यह सच है परन्तु जहां तक रोने का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं हम बड़े फिसड्डी सिद्ध हुए हैं। 'हम' से मेरा तात्पर्य सारे मानव समाज से है। कभी श्रापने इस बात पर ध्यान दिया कि जैसे-जैसे हम उम्र में बड़े होते चले जाते हैं, गाना तो खैर कभी-कभी सुन लेते हैं, श्रौर यदि कोई पास न हो तो गा भी लेते हैं, (जैसे नहाने के कमरे में या सुनसान जंगल में चलते हुए) परन्तु रोना, जो हमारे बचपन का सर्वप्रिय मनोरंजन था, श्रब हम से छूटता जा रहा है। बड़े होकर उसे लगभग भुला दिया जाता है। श्रभी कल ही मेरे एक मित्र बता रहे थे कि श्रन्तिम बार जब वे रोए थे, उस श्रवसर को दो वर्ष का समय बीत चुका है। वे बोले—"उस दिन मेरे एक घनिष्ट मित्र की मृत्यु हुई थी।" फिर मेरी श्रोर देख कर श्रौर एक श्राह भरकर वे कहने लगे—"श्राज कल तो न किसी प्यारे मित्र की मौत होती है, न कोई निकट सम्बन्धी मरता है कि चार श्रांसू बहा कर जी ठंडा कर लिया जाए। कभी-कभी ऐसे ही रोने को इतना जी करता है कि पर फिर सोचता हूं कि लोग देखकर क्या कहेंगे।"

रोना क्यों इतना बुरा काम समझा जाता है? इसका कारण क्या है कि हर शरीफ श्रादमी इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखता है श्रौर कायरता की निशानी समझता है? रोना तो एक प्राकृतिक क्रिया है, बल्कि सब से पहली श्रौर बहुत सी हालतों में, सबसे ज़रूरी क्रिया। गाना निस्सन्देह एक श्रच्छी चीज़ है। परन्तु रोना उससे हज़ार गुना

ससार में अपनी बेटी के दुल्हे को देखा—उसके घोड़े की रकावें सोने की थीं और वाग में मोती गुंथे हुए थे, आकाश से पुष्पवर्षा हो रही थी, अप्सराएँ नाच रही थीं और उसके चाद से जवाई ने झुककर उसके पैर छुए और पद-रज ली।

पोते ने वड़े होकर अपने दादा के नाम पर एक हस्पताल वनवाया है, जिसमें दुनिया भर के गठिया के मरीजों का इलाज होता है (क्योंकि दादा को स्वय गठिया का मर्ज था और वह डाक्टर को फीस देते तंग आ चुका था।)

उस परमपिता परमेश्वर ने सत्तर साल से अधिक उम्र के वूढो के सब पाप क्षमा कर दिए हैं। उनमें वूढ़े दादा भी शामिल हैं। वह खुशी से नाचना चाहते हैं, पर गठिया के कारण नाच नहीं सकते। वह गाना चाहते हैं, पर कठ रुध गया है। सुनना चाहते हैं, परन्तु समस्त विश्व पर एक निस्तब्धता-सी छा जाती है। फिर चारो ओर अंधेरा ही अंधेरा या रोशनी ही रोशनी या पानी ही पानी—फिर उन्हें लगता है वे सिमट रहे हैं, सिकुड रहे हैं, और एक अणुमात्र रह गए हैं—अंधेरे का नन्हा-सा विन्दु, प्रकाश की छरहरी-सी किरण और पानी की सूक्ष्म-सी लहर।

इसी भाँति जीवन वीत जाता है—हवाई महल वनाते-वनाते।

रोना १६.

कहावत प्रसिद्ध है कि गाना और रोना किसे नहीं आता। कहने को यह सच है परन्तु जहाँ तक रोने का सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ हम बडे फिसड्डी सिद्ध हुए है। 'हम' से मेरा तात्पर्य सारे मानव समाज से है। कभी आपने इस बात पर ध्यान दिया कि जैसे-जैसे हम उम्र में बडे होते चले जाते हैं, गाना तो खैर कभी-कभी सुन लेते हैं, और यदि कोई पास न हो तो गा भी लेते हैं, (जैसे नहाने के कमरे में या सुनसान जगल में चलते हुए) परन्तु रोना, जो हमारे बचपन का सर्वप्रिय मनोरजन था, अब हम से छूटता जा रहा है। बडे होकर उसे लगभग भुला दिया जाता है। अभी कल ही मेरे एक मित्र बता रहे थे कि अन्तिम बार जब वे रोए थे, उस अवसर को दो वर्ष का समय बीत चुका है। वे बोले—"उस दिन मेरे एक घनिष्ट मित्र की मृत्यु हुई थी।" फिर मेरी ओर देख कर और एक आह भरकर वे कहने लगे—"आज कल तो न किसी प्यारे मित्र की मौत होती है, न कोई निकट सम्बन्धी मरता है कि चार आंसू बहा कर जी ठडा कर लिया जाए। कभी-कभी ऐसे ही रोने को इतना जी करता है कि पर फिर सोचता हूँ कि लोग देखकर क्या कहेंगे।"

रोना क्यों इतना बुरा काम समझा जाता है? इसका कारण क्या है कि हर शरीफ आदमी इसे तिरस्कार की दृष्टि से देखता है और कायरता की निशानी समझता है? रोना तो एक प्राकृतिक क्रिया है, बल्कि सब से पहली और बहुत सी हालतों में, सबसे आखरी क्रिया। गाना निस्सन्देह एक अच्छी चीज है। परन्तु रोना उससे हजार गुना

ग़लत । समझ में नहीं आता यह लडका सारे साल क्या करता रहा।"

"करता क्या रहा !" लडके का बाप हाथ में छडी लेकर उत्तर देता "बदमाश कहीं का, सारा साल ताश पीटता रहा है । आप ठीक ही कहते हैं, यह पास कैसे होता । क्यो बे हरामी ।"

अब तक मैं कई लडको को इस प्रकार पिटवा चुका हूं, परन्तु फिर भी लोग मेरा पीछा नहीं छोड़ते ।

+ + +

मैंने तग आकर अब प्रोफेसरी छोड दी है । अब मैं अनारकली में आटे, तेल, नमक की दूकान करता हूं । परन्तु इस पर भी लोगो की ग़लत फहमी दूर होने में नहीं आती । वे समझते हैं कि मैं अभी तक प्रोफेसर हूं और इस दूकान पर यू ही आ बैठता हूं । या शायद यह मेरे किसी मित्र की दूकान है । अगर मैं किसी को सच्ची बात बता भी दू तो वह समझता है, मैं हँसी कर रहा हूं । इसलिए खूब खिलखिला कर हँसते हैं ।

और कहते हैं—"हा—हा—हा—प्रोफेसर साहब आप तो बहुत ही दिलचस्प आदमी हैं ।"

सच तो यह है कि इस ससार में सच, झूट है और झूट, सच ।

है जो आजकल चश्मे की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता ? लोग अपना स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए सिद्ध मकरध्वज, च्यवनप्राश, गोल्डन पिल्ज और शरबत फौलाद का सेवन करते हैं। परन्तु यदि वे इन बहुमूल्य औषधियो के स्थान पर प्रकृति के अमूल्य सिद्धान्त पर अमल करें और दिन में केवल एक आध घन्टा जी भर कर रो लिया करें, तो जहां शरीर नीरोग रहे, वहां मन में शान्ति का वास रहे और उस अशांति से मुक्ति मिल जाए जो इस बीसवीं शताब्दी में प्रत्येक मनुष्य के अन्तर में घर कर गई है।



यह तो आपने देख लिया कि रोना स्वास्थ्य के लिए कितना लाभदायक है। रोना शरीर का भोजन है, न केवल शरीर का बल्कि आत्मा का। ऐसी कल्याणकारी वस्तु को बडे पैमाने पर प्रचलित करने के लिए विश्वव्यापी प्रचार की आवश्यकता है। इसके लिए स्थान-स्थान पर साहित्यिक सभाओ की भांति, रोने वालो की सभाए स्थापित की जाए। स्कूल और कालिजों में रोना 'अनिवार्य विषय' घोषित कर दिया जाए। ऐसी फिल्में दिखाई जाएं जिनमें बडे-बडे आदमी रो रहे हो, जैसे हिटलर, मिसोलिनी, चर्चिल, चांगकाई शेका, बडे-बडे आदमियो को इस प्रकार दहाडें मार-मार कर रोते देखने से जनता पर बडा अच्छा प्रभाव पडेगा और वे भी रोने लग जाएगे। तनिक कल्पना कीजिए कि एक बडा-सा सिनेमा हाल है, जहां हजारों व्यक्ति बैठे हुए जोर-जोर से रो रहे हैं। कितना सुन्दर दृश्य है। क्या यह आपकी कलात्मक भावनाओ को प्रेरित नहीं करता ? या फिर हाकी, फुटबाल क्रिकेट और कुश्ती की भांति, रोना भी कसरत के रूप में सिखाया जाए। हर शाम शहरो और देहातो



अच्छी चीज है। बचपन में हम गाते कम हैं और रोते अधिक हैं। बचपन में जब हम रोते थे तो बहुधा बार-बार पुचकारे जाने पर भी चुप न होते थे। वे कहते थे, 'रोओ, खूब रोओ, रोना बच्चों के लिए अच्छा होता है।' परन्तु अब अजीब हालत है। यदि भावनाओं से प्रभावित होकर किसी मनुष्य की आंखें भर आएं, तो लोग उसे कायर और कम हिम्मत कह देते हैं। यदि किसी बेचारे की आंखों से दो-चार आंसू टपक पड़ें या एक आध हल्की सी चीख निकल जाए तो लोग उसे नपुंसक कहने में नहीं चूकते। आखिर बात क्या है? एक चीज जो बच्चों के लिए लाभदायक है, उन आदमियों के लिए जो कभी बच्चे ही थे, किसप्रकार हानिकारक हो सकती है।

वैद्य लोगों का कथन है कि रोना बच्चों के लिए बड़ा लाभकारी है, क्योंकि इससे छाती खुलती है, फेफड़े मजबूत होते हैं, आंसुओं के बहने से आंखों की पुतलियां धुलकर साफ होती हैं, नाक के बहने से सांस का आना-जाना नियमित हो जाता है, स्नायु शक्ति प्राप्त करते हैं। कहने का उद्देश्य यह है कि रोना, कुश्ती करने के बाद, दूसरी सर्वोत्तम कसरत है। फिर इससे केवल बच्चे ही लाभ क्यों उठाएं? क्या हमें चौड़ी छातियों और मजबूत फेफड़ों की आवश्यकता नहीं है? मेरे विचार में यदि बचपन में इन चीजों की आवश्यकता थी, तो जवानी या बुढ़ापे में तो इनकी आवश्यकता बहुत अधिक होनी चाहिए। कदाचित दिन-रात रोते रहने के कारण ही बच्चों को तपेदिक नहीं होती। यदि हम लोग भी दिन में तीन या चार घन्टे रो लिया करें, तो जहां फेफड़े मजबूत हों, वहां न दमा हो और न खांसी। आंखों का तौर भी बढ़ जाए। भला कितने बच्चे चश्मा लगाते हैं और कौन-सा बूढ़ा या जवान

पुचकारा, उधर मुस्कान का सूर्य बादलों को चीरकर निकल आया। पल में वर्षा, पल में धूप। परन्तु एक रोने ही का क्या कहना, लड़कपन में हर काम ही ऐसा होता है। परन्तु जवानी से तो कहीं अच्छा है। जवानी में लोग एक तो रोते ही नहीं, यदि रोते हैं तो बहुत कम और उस जगह जहां न कोई देख पाए और न सुन पाए; मानो कोई पाप कर रहे हों।

बुढ़ापे में भी लोग रोते हैं, परन्तु इस तरह कि रोने पर हँसी आती है। भला यह भी कोई रोना है कि 'हू-हू' करके, होठों पर झाग लाकर, आंसुओं से दाढ़ी भिगो डाली। यह रोना नहीं, रोने की हँसी उड़ाना है। वास्तव में किसी ने ठीक ही कहा है कि बुढ़ापे में अक्ल ठिकाने नहीं रहती। और वैसे भी इसमें बूढ़ों का क्या दोष। वे तो रोने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। यदि उन्होंने रोने को कला या कसरत के रूप में सीखा होता तो इस भौंडेपन का परिचय क्यों देते।

रोना वास्तव में एक कला है, एक कसरत है। इसको बच्चों और स्त्रियों ने खूब समझा और अपनाया है। मैंने वे बच्चे देखे हैं जो इस तरह सिसकियां भर-भर कर रोते हैं कि आदमी का कलेजा पिघल जाता है; मन में प्यार उमड़ आता है और उसकी बाहें उन्हें उठाने के लिए आगे बढ़ जाती हैं। और स्त्रियां ? रोने की कला को यदि किसी ने उसके सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत किया है, तो वह स्त्री है। स्त्री के रोने ने राष्ट्रों और जातियों के इतिहास की धाराएं बदल दी हैं। एक किलो-[illegible]रा, एक हैलन, एक मिसेज सिम्पसन—आंसुओं से भरी इन आंखों ने [illegible]हास को जन्म दिया है। संसार का इतिहास आज सर्वथा भिन्न होता [illegible]द उसके हर पन्ने पर किसी स्त्री के दो-चार आंसू न टपके होते। वैसे भी स्त्री के आंसुओं के कारण करोड़ों घरों में हर सातवें दिन एक प्रायः क्रांति आ जाती है। और इसका कारण ? इसका कारण केवल यह है कि अभागे पुरुष रोना नहीं जानते और स्त्रियां आंसू बहाकर उन्हें सदा के लिए अपना दास बना लेती हैं। समय आ गया है कि संसार

आधार आत्मा है, लौकिक और भौतिक वस्तुओ से मिला रहे हो। आज .."

बशीर से और न सहा गया। वह बोल उठा—"तुम प्रेम को इस दुनिया से परे की चीज बताते हो ? प्रेम क्या, दुनिया की हर एक चीज मैटर (matter) यानी माद्दे से बनी है। इस सच्चाई को तुम एक हवाई लैक्चर देकर नहीं झुठला सकते। जो चीज गोबर के ढेर में मच्छर पैदा करती है, वही चीज दूसरी तरफ तुम्हारे दिमाग की सलवटों में प्रेम को जन्म देती है—लैनिन ने अपनी एक किताब में यही लिखा है।"

बशीर, जैसा कि बहुत कम लोग जानते है, हिन्द महासागर के इस पार तीसरा शुद्ध साम्यवादी है और भारत में पाँचवे इन्टरनेशनल की नींव रखने में सलग्न है। इसलिये जब कभी वह क्लब में किसी विषय पर बोलता है तो सिवाए दो-एक सिर फिरे मेम्बरो के, बाकी सब मेम्बर उसके विचार से सहमत हो जाते है। परन्तु उपेन्द्र उन सिर फिरे मेम्बरों में से एक था और उसका दूसरा साथी था हरि।

"यह सब बकवास है"—हरि ने बशीर की बात का विरोध करते हुए कहा—"प्रेम कोई लौकिक चीज नहीं है। वह सचमुच एक अलौकिक और आध्यात्मिक भावना है। उसका माद्दे यानि भौतिक चीजो से कोई सम्बन्ध नहीं है। बशीर ने जो नतीजे निकाले है, ये बिलकुल गलत हैं। ... और करुणा ही के सम्बन्धों को ले लो। करुणा उपेन्द्र से प्रेम ... है—अगाध प्रेम। करुणा एक अमीर लडकी है—मेरा मतलब है कि उसके पिता बहुत बडे रईस है। अब देखिए कि अमीरी और ... का भेद होते हुए भी करुणा उपेन्द्र से प्रेम करती है। इससे यह साफ हो जाती है कि उसके प्रेम में किसी सांसारिक वस्तु का लोभ शामिल नहीं है। उसका प्रेम शुद्ध रूप से आध्यात्मिक और अलौकिक है। वह केवल उपेन्द्र से, उसके लेखों से प्रेम करती है। उसका प्रेम निश्चय ही आत्मा का अमर आकर्षण है।"

बदसूरती १७.

इसे मेरी रुचि का दोष कहिए या असाधारण व्यवहार की प्रवृत्ति, परन्तु यह एक वास्तविकता है कि बदसूरती को मैं खूबसूरती से अच्छा समझता हूँ। खूबसूरत चीजों को देखकर सहसा मन में यह विचार आता है कि सौन्दर्य तो नाशवान् है, आकाश की लालिमा की भाँति शीघ्र लुप्त हो जाने वाला, इन्द्र धनुष की भाँति क्षण भर में विलीन हो जाने वाला। परन्तु वह चीज तो सदा बनी रहती है, जिस पर हमारी इन्द्रिया अपनी तृप्ति के लिए सदैव निर्भर रह सकती है, जिसके बारे में कोई निश्चित मत निर्धारित किया जा सकता है, वह केवल एक चीज है, और वह है बदसूरती। इस ससार की प्रत्येक वस्तु, चाहे उसका प्रारम्भिक रूप कितना ही उज्ज्वल और मोहक क्यो न हो, अपने अन्त को पहुँचकर अनिवार्य रूप से बदसूरत बन जाती है। फूल मुरझा जाते हैं; स्त्रियां बूढी हो जाती हैं, आकाश की लालिमा अन्धकार में बदल जाती हैं परन्तु बदसूरती सदैव बनी रहती है, आदि से अन्त तक। तो फिर क्यों उन वस्तुओं की ओर ध्यान आकृष्ट होने दिया जाए जो क्षणिक हैं, अस्थायी और नश्वर है, और मनुष्य क्यो न उन वस्तुओ के प्रति आसक्ति बढाए जो स्थायी और अमर है, जो कभी नहीं बदल सकतीं, जिनके रूप में कभी परिवर्तन नहीं आ सकता और जो प्रकृति के नियम की भाँति अटल है ?

बदसूरती के सम्बन्ध में मेरे विचार किसी रहस्यवादी भ्राति का परिणाम नहीं है। इनका आधार शुद्ध रूप से दार्शनिक है। इनका

के पुरुष उठें और अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करें। अब समय आ गया है कि हम उस माया के बादल को छिन्न-भिन्न कर दें जिसने सत्य के सूर्य को अब तक हम से छिपा रखा है। उठो, स्वतन्त्रता के दीवानो, उठो। याद रखो कि हमारी स्वतन्त्रता का रहस्य रोने में छिपा है—खूब रोओ, जी भर कर रोओ, दिन में बार-बार रोओ, यदि स्त्री के दो दो आंसू संसार में क्रांति ला सकते हैं तो पुरुषों के आंसू क्या न कर सकेंगे?

की सूरतो का मुलाहिजा कीजिए। दो-चार को छोडकर शेष सब ऐसे हैं कि उनकी सूरत देखते ही प्रभू की महिमा का गान करने को जी चाहता है। मैं यह बात पूरी गम्भीरता से कह रहा हूँ, क्योंकि मेरा अटल विश्वास है कि 'महानता' केवल बदसूरत आदमियों के भाग्य में लिखी होती है। इस बीसवीं शताब्दी में जब स्त्री और पुरुषो को सुन्दर बनाने के सैकडों उपाय निकाले जा रहे हैं, मुझे यह देखकर बडी सान्त्वना मिलती है कि ससार के बडे-बडे नेता, बडे-बडे सत्ताधारी, जनरल, साहित्यिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक आज भी बदसूरत ही हैं।

× × ×

सच तो यह है कि मुझे बदसूरती के प्रति एक प्रकार की आसक्ति हो चली है। लोग तो सुन्दर स्त्रियो पर मरते हैं, पर मैं हूँ कि बदसूरत स्त्रियो को देख-देखकर जीता हूँ। जब कभी मेरे घर में मेरे विवाह की बात चलती है तो मैं कुछ घबरा-सा जाता हूँ। नवयुवको की भाँति, जो ऐसे अवसरो पर 'लडकी कैसी है? सुन्दर है न? रग कैसा है? कद कितना है?' जैसे प्रश्नो का तांता बांध देते हैं, मैं भी ऊल-जलुल बकने लग जाता हूँ। उदाहरणत —

"लडकी बदसूरत है न?"

"हाँ।"

परन्तु केवल 'हाँ' से मेरी सन्तुष्टि नहीं होती। इसलिए मैं फिर पूछता हूँ—

"क्या उसका रग काला है, अमावस की रात जैसा?"

"हाँ हाँ, निश्चिन्त रहो।"

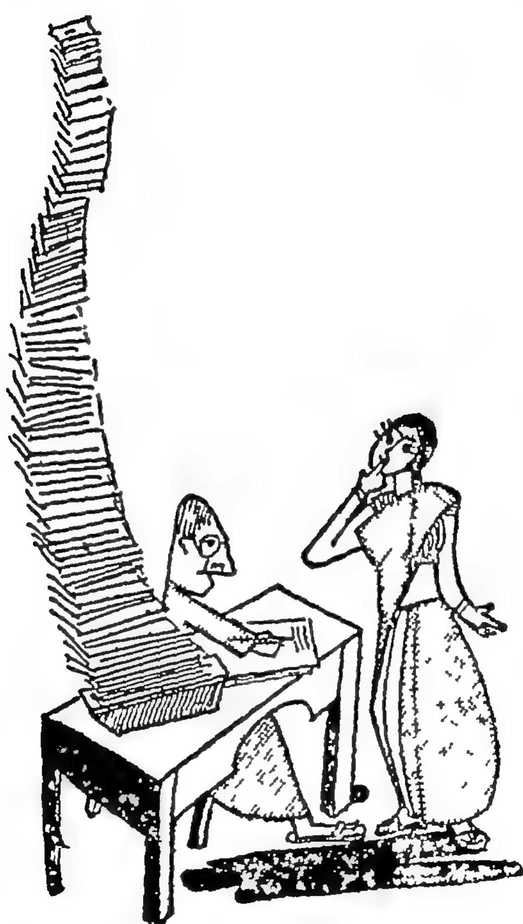
"और दांत?"

"मैले और लाल-लाल, शायद पान बहुत खाती है।"

"बहुत खूब! अच्छा! पर यह तो बताओ उसकी आँखें कैसी हैं?

"आँखें तो तनिक बडी-बडी सी हैं। चेहरे पर तो भली मालूम

"परन्तु हम एक ड्यूक ऑफ विण्डसर और एक करुणा की ब
नहीं कर रहे हैं।" श्याम न बहस में भाग लेते हुए कहा—"एक ड्
ऑफ विण्ड
यहाँ और
करुणा यहाँ,
विशेष फर्क
नहीं करते।
विश्वास है कि
हम प्रेम का व
निक विश्ले
करें तो इस वि
षण के परि
इन दो अस
रण उदाह
पर भी उसी
पूरे उतरेंगे।
तरह अन्य स
रण लोगों के
पर। प्रेम
आखिर तर्क
दृष्टि से क्य
परखा जाय?
को आध्या



मानना तो केवल अपने को बच्चे की भाँति बहकाना है। प्रेम को भी
वातावरण में रख कर वैसी ही आसानी से परखा जा सकता है।
न्यूटन के आकर्षण-सिद्धान्त को या मनुष्य के शरीर से पसीना नि
की क्रिया को। सच तो यह है कि पुरुष सदा स्त्रियों में सुन्दर

श्रौर सस्ती भावनाश्रों से ऊपर उठकर इस गम्भीर प्रश्न पर विचार करेंगे। इसके अतिरिक्त वे तो सौन्दर्य का गुण-गान करने के कारण ही कमा खाते हैं। यदि आज लोग बदसूरती के महत्त्व को समझ जाएँ तो यही कवि लोग, जो आज चन्द्रमा श्रौर कलियो पर जान छिडकते हैं, कल कौवो श्रौर भग की पत्तियो पर कविता करने लगे। आवश्यकता इस बात की है कि पहिले आप लोगों की मनोवृत्ति में थोडा-सा परिवर्तन हो। परन्तु मैं इस पर भी कवियो का विश्वास नहीं करूँगा, क्योंकि कविता करना स्वय एक सुन्दरता है श्रौर सुन्दरता का विश्वास क्या? स्वय कवियो ने अपनी लाखो कविताश्रों में सौन्दर्य की निर्ममता श्रौर उसकी नश्वरता का रोना रोया है। फिर यह किस मुंह से बदसूरती के विरुद्ध कुछ कहने का साहस कर सकते हैं?

सौन्दर्य लडाई की जड है। पाषाण श्रौर धातु-युग से लेकर आज तक यह सौन्दर्य ही ससार की शान्ति को भग करता चला आया है। सुन्दर चीजो के लिये लोगो ने अपने प्राण गँवाए, सस्कृतियाँ मिट गईं श्रौर राष्ट्र नष्ट हो गए। परन्तु हम हैं कि उसी उन्मादक लोलुपता से पुराने मार्ग पर लुढ़के जा रहे हैं—'सुन्दरता, सुन्दरता, सुन्दरता!'

इस उन्माद के आवेश में हम यह विचार नहीं करते कि विश्व की शान्ति किस कारण खतरे में है। वह क्या चीज है जो ससार की अनेक जातियों को एक-दूसरे से मिलने नहीं देती। यदि तनिक भी विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि ससार में फूट श्रौर सघर्ष का मात्र कारण सौन्दर्य है। लोग लडते हैं, सुन्दर चीजों के लिए; सुन्दर विचारों के लिए, सुन्दर स्त्रियो के लिए, सुन्दर प्रदेशों के लिए, सुन्दर देशों के लिए। यदि लोग आज बदसूरती के महत्त्व को समझ जाएँ तो शान्ति तुरन्त स्थापित हो जाए। पिछले दस-बारह हजार वर्षों के मानव-जीवन में इस सौन्दर्य ने जो मुसीबतें ढाई हैं, इतिहास के पन्ने उसके गवाह हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लोग सौन्दर्य के घातक परिणामों से परिचित हो जाएँ श्रौर सुन्दर चीजों के लिए लडना-झग-

होती है। और वाल भी तो घुंघराले हैं।"

"चच .च च "मैं हाथ मलते हुए कहता हूँ "यह तो वहुत वुरी वात है।"

और इस प्रकार यह सम्वन्ध टूट जाता है।

इस प्रकार कई रिश्ते आए, पर हरएक में कोई न कोई दोष निकल आया। किसी का रंग खिलता हुआ था, किसी की नाक सुतवां थी, किसी की कमर पतली थी, किसी का क़द सरो की भांति था। आशा की कली न खिलनी थी, न खिली। और यद्यपि अव मेरी आयु पंतीस वर्ष से ऊपर है, परन्तु अव भी एक ऐसी स्त्री की खोज में हूँ जो सिर से पैर तक वदसूरत हो। एक वार मिन्टो पार्क लाहौर की नुमाइश में एक ऐसी स्त्री देखी थी, जिसके लिए मैं निश्चित रूप से कह सकता था—'ओ मेरे स्वप्नों की रानी।' परन्तु वह किसी की व्याहता निकली।

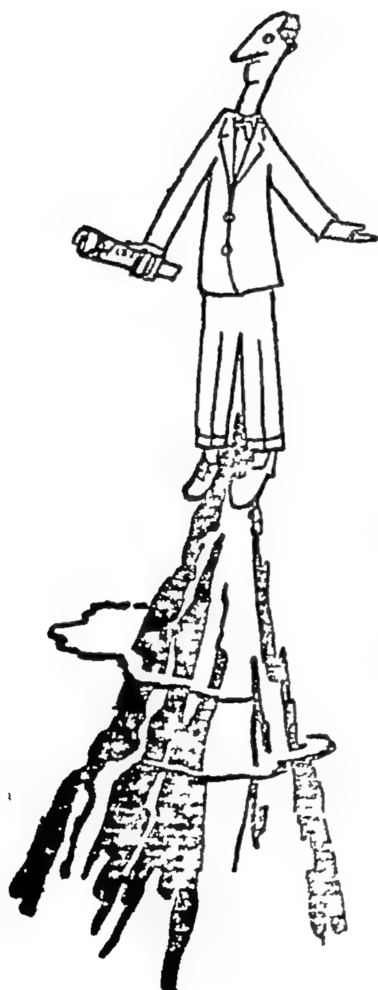


× × ×

वदसूरती के विरुद्ध यदि कोई तर्क जुटाया जा सकता है तो वह है, कवियो का काव्य। कवि लोग यदि कविता करते हैं तो केवल सुन्दर चीज़ों के वारे में, जैसे सुन्दर नारी, सुन्दर फूल, सुन्दर घाटी। वस यही उनके विषय हैं। क्या कभी किसी कवि ने मगरमच्छ के रूप का वखान किया ? किसी वदसूरत औरत को देखकर कभी किसी कवि की काव्यात्मक भावनाएँ तरंगित हुई ? यदि नहीं, तो सिद्ध हुआ कि वदसूरती एक वेकार चीज है। कुछ इसी प्रकार के तर्क, भावुक प्रकृति वाले लोग, वदसूरती के विरुद्ध पेश करते हैं। लेकिन इन तर्कों को अधिक महत्त्व देने की ओर इन पर गम्भीरता से चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं, क्योकि कवियो से यह आशा की ही नहीं जा सकती कि वे उथली

वैचलर आफ़ आर्ट्स

१८.

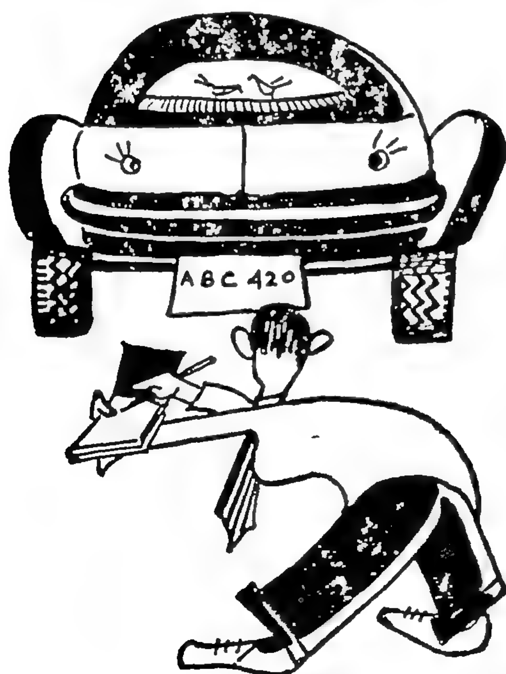


बैचलर आफ आर्ट्स—कितना शानदार नाम है। सुनते ही मुंह में पानी भर आता है। किसी अंग्रेजी मिठाई का नाम मालूम होता है या कोई सम्मान की पदवी। 'राय साहब' और 'खान बहादुर' तो इसके सामने बिलकुल निर्जीव और तुच्छ मालूम होते हैं। 'बैचलर आफ आर्ट्स' यह शब्द बोलते समय जबान चटखारे लेती मालूम होती है। कितने वैभव शाली शब्द हैं—ऐसा लगता है जैसे किसी बडी इमारत का नाम हो—ऐसी इमारत जो ताजमहल की भांति सुन्दर और कुतुब की लाट की भांति ऊंची हो।

परन्तु वास्तव में 'बैचलर आफ आर्ट्स' न तो कोई अंग्रेजी मिठाई है और न ही कोई पदवी या इमारत। यह तो एक गरीब, अनाथ-सी डिग्री का पूरा नाम है जिसे जन-साधारण की भाषा में बी०ए० कहते

अब सब की दृष्टि सुक्खो पर गडी थी —सुक्खो जो कहानीकार था। वह क्या कहना चाहता था, प्रेम के बारे में उसके क्या विचार थे, यह जानने के लिए क्लब के सारे मेम्बर आतुर हो उठे। सुक्खो आज इस तमाम बहस में मुंह फुलाए एक ओर बैठा रहा था। सब की आंखें अपने चेहरे पर लगी देखकर वह अपनी कुर्सी पर विकलतापूर्वक हिला, कसमसाया और कहने लगा—"मैं तुम्हे एक कहानी सुनाना चाहता हूँ—यह कहानी आपबीती है।"

"एक बार का जिक्र है।" सुक्खो ने कहना आरम्भ किया "मुझे एक लडकी से पहली ही निगाह में प्रेम हो गया। मैंने उस जैसी सौन्दर्य की प्रतिमा आज तक नहीं देखी। जैसे-जैसे मैं उसकी ओर देखता जाता था, मेरा प्रेम बढता जाता था और यद्यपि इसमें कोई शक नहीं कि मैं प्लाजा थियेटर के तीसरे दर्जे में बैठा था और वह फर्स्ट क्लास में, परन्तु फिर भी मेरे प्रेम का यह हाल था कि सिनेमा का पर्दा इधर था और मैं पीछे फर्स्ट क्लास की ओर देख रहा था। खेल के समाप्त होने तक मुझे विश्वास हो गया कि परम पिता परमेश्वर ने मुझे एक अमर भावना से प्रेरित किया है। इसलिए



खेल खत्म होने के बाद मैंने इस शाश्वत भावना से उन्मत्त होकर

और इस तरह की रूमानी कहानियाँ आपने भी अवश्य सुनी होगी। एक रगरेज का लडका जो बी० ए० पास करने के बाद वजीफा लेकर विलायत गया और वहा से आकर सीधा चीफ इजीनियर बन गया। एक पटवारी का बेटा, जो एक दिन अपने बाप का अफसर बना और जिसे अन्त में अपने-बाप ही को घूस लेने के अपराध में नौकरी से हटाना पडा।

एक निर्धन तेली का लडका जो बी० ए० पास करने के पश्चात् आई० सी० एस० बना और जिसके ड्राइगरूम में आज भी एक छोटा-सा चांदी का कोल्हू यादगार के रूप में मेंटल पीस पर रखा हुआ दिखाई देता है। एक गडेरी बेचने वाले का पोता और एक खानसामा का धेवता • पुराने जमाने की अचरज भरी, अनोखी कहावतें और कहानियाँ, रोचक, मधुर, रोमाचकारी, जिन्हें पुराने जमाने के पेंशन पाने वाले बूढ़े या बूढी दादियां जाडो के दिनों में अगीठी के पास बैठकर कम उम्र और कम अक्ल, अडर ग्रेजुएटो को सुनाया करती है। मै इन्हें बी० ए० की कहानियाँ कहा करता हूँ। यह बी० ए० की कहानियाँ इतनी ही रोचक, मधुर और आश्चर्य जनक होती है जितनी 'चन्द्रकान्ता' की घटनाएँ। इन्हीं कहानियो को सुन-सुन कर बेचारे अडरग्रेजुएट नये-नये स्वप्न देखते लगते हैं और हवाई महल बनाने लगते है। कभी कल्पना ससार में देखते है कि वे हाइकोर्ट के जस्टिस की कुर्सी पर बैठे है और उनके चारों ओर वकील और बैरिस्टर 'माई लार्ड, माई लार्ड' कह कर सम्मान प्रकट कर रहे हैं। या फिर वे पुलिस कप्तान बन गए है और घोडे पर सवार होकर बाजार से निकल रहे हैं। उनकी पगडी का तुर्रा हवा में लहरा रहा है और लोग उन्हें झुक-झुक कर सलाम कर रहे है। या फिर वह आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में चौथे नम्बर पर आए हैं और उनके पिता को इतनी प्रसन्नता हुई है कि उन्होने शहर के सारे बैंड-बाजे अपने घर के दरवाजे पर इकट्ठे करवा लिए है।

परन्तु यह सब धोखा है, माया है, भ्रम है।

हैं। शायद आप मेरी बात मानने से इन्कार करें और क्रोध में आकर कहें 'मजी साहब, यह आप क्या कहते हैं। कहाँ बैचलर आफ आर्ट्स जैसा सुन्दर और आकर्षक नाम और कहाँ बी० ए० जैसी पोच डिग्री? इन दोनों में क्या समानता हो सकती है? कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली। उंह!'

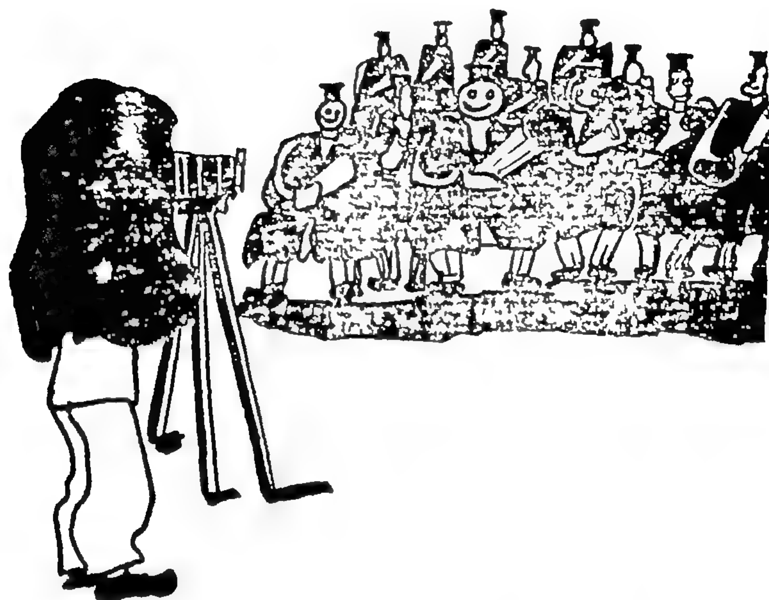
परन्तु यह है ठीक—बैचलर आफ आर्ट्स ही बी० ए० का पूरा नाम है। इसमें हैरान होने की क्या बात है? क्या आप अपने नौकर 'फतहसिंह' को 'फत्तू' कह कर नहीं पुकारते? दफ्तर के चपरासी मगलसिंह को 'मगलू' नहीं कहते? फिर यदि समय के चक्कर से 'बैचलर आफ आर्ट्स' सिमट कर और सुकड़ कर केवल बी० ए० रह जाए तो अचम्भे की कौन-सी बात है? गरीबी में ऐसा ही हुआ करता है।

किन्तु एक जमाना था कि जब बी० ए० की दशा इतनी दयनीय नहीं थी, जितनी अब है। यह उस जमाने की बात है जब हम में से बहुत से नौजवान पैदा भी नहीं हुए थे। उन दिनों सुना है कि बी० ए० की डिग्री का बहुत रोब था। हमारे मुहल्ले में एक बूढे डिप्टी साहिब रहते हैं। बड़े भलेमानस हैं, बाल सफेद हो गये हैं और आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं। एक दिन बातो ही बातो में मुझसे कहने लगे, "चिरजीव, देखता हूँ आजकाल उदास रहते हो और आवारा घूमते हो! किन्तु जब हम तुम्हारी उम्र के थे तो बी० ए० पास करते ही तहसीलदार बन गये थे और एक तुम हो कि बी० ए० पास करने पर नौकर तक हुए नहीं और सूट-बूट डाटे फिरते हो।"

इस तरह वह पन्द्रह-बीस मिनट तक लम्बा-चौड़ा उपदेश देते रहे। जब चुप हुए तो मैंने विनीत स्वर में सिर झुकाकर कहा, "श्रीमान् आपने किस सन् में बी० ए० पास किया था?"

डिप्टी साहिब ने आँखें बन्द करके और दिमाग पर जोर देकर कोई सन् बताया। वह सन् मुझे ठीक प्रकार याद नहीं, परन्तु वह सन् ईसा से पूर्व नहीं था।

हमें देख-देख कर खुश हो रहे थे और हंस रहे थे। हम टोलियां बनाए, रेशमी गाउनो की सरसराहट का सगीत सुनते हुए, अनारकली में फोटोग्राफरो की दूकानों में घुसते चले गए। यहां कितनी भीड थी। चारों



ओर काले गाउन, दिलचस्प बातें, ऊंचे कहकहे, और "चीयरियो", "माईडीयर" की आवाज़ें। फोटो उतरवाए गए और फिर रास्ते में लिखने के पैड का भी आर्डर दिया गया—"लाला पैंडाराम, बी० ए०," "मलिक अल्लाह बख्श बी० ए०", "सरदार बूटासिह, बी० ए०"—द्देश्य नाम छपवाना नहीं था बल्कि शब्द "बी० ए०" का प्रचार करना था।

परन्तु जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं, यह दशा बहुत दिनों तक कायम नहीं रही। घरवालों के चाव-चोंचले, दोस्तों, बूढ़ों और रिश्तेदारों की खातिरदारियां, दो-चार दिन की थीं। कुछ दिन तक तो प्रशसा और प्यार भरी बातो का सिलसिला चला और हमने समझा कि अब

प्रेमिका से शादी का प्रस्ताव करो। कम्बख्त सामने बैठा तो है, पूछ लो न।"

"फिर क्या हुआ ?" हम सब ने एक साथ चिल्ला कर कहा।

"कुछ नहीं" नुक्खो ने शान्त स्वर में कहा—"उस दिन जब मैं उसके पढ़ने के कमरे में पहुँचा तो वह बडे प्यार से उस समय आराम कुर्सी पर बैठी ऊँची आवाज में टैनीसन की कविताएँ पढ रही थी और अपने मधुर, कोमल और रसीले कठ का स्वय ही आनन्द ले रही थी। मुझे देखते ही कहने लगी—"हल्लो बुद्धू अडवानी।" वह मुझे इसी नाम से पुकारा करती थी।"

"हल्लो किर .की," मैंने उत्तर दिया। मैं उसे इसी तरह पुकारा करता था।

"हल लो, यह क्या, आज तुमने एक नई टाई बाँध रखी है ? खैरतो है ?"

मैंने अपने चेहरे पर एक म्लान, विषादयुक्त मुस्कान फैला की और कुर्सी घसीट कर उसके निकट बैठ गया और धीमे स्वर में कहने लगा—

"पढ़े जाओ किर . की, पढ़े जाओ। मैं तुम्हारी मीठी आवाज सुनता रहना चाहता हूँ, यहाँ तक कि यह आवाज कीट्स की बुलबुल के नगमे की तरह मुझे अपने में समा ले। आह तुम्हारी आवाज किस कदर मीठी है।"

उसने और ऊँची आवाज में पढना शुरू कर दिया। परन्तु अब वह चीख रही थी और बडी कडवाहट से मेरी नकल उतार रही थी।

"कल मैंने वाई० एम० सी० ए० में पिंगपांग चैम्पियनशिप जीत ली।" मैंने अपने सिर के चारो चोर प्रकाश-मण्डल बनाते हुए कहा।

"बहुत खूब" किर .की ने जवाब दिया—"तुम एक दीवार के मुकाबले में खेल रहे थे ?"

"किरकी, मजाक की हद हो चुकी," मैंने रुंधे हुए गले से कहा—

गया। इसी कारण पर्चे अच्छे न हुए। रही सही कसर इंटरव्यू ने पूरी कर दी। यह इन्टरव्यू भी अजीब बला है। हमने यह विषय बी० ए० में काहे को पढ़ा था। यह तो खैर हुई कि मैंने सावधानी बरती और पिताजी की सोने की घड़ी साथ लेता गया, जो उन्हें इनाम में मिली थी, वरना बड़ी हेटी होती। इन्टरव्यू बोर्ड के चेयरमैन बड़े ही सहज स्वभाव के थे। बड़े ही प्यार से कहने लगे—"तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने कांपती हुई आवाज में अपना नाम बताया तो बोर्ड के दूसरे मेम्बर झट बोल उठे—"डरते क्यों हो? खुलकर बात करो। हम तुम्हे खा तो नहीं जाएंगे।" मैंने उत्तर दिया—"मैं किसी से नहीं डरता। मेरा बाप नम्बरदार है।"

बोर्ड के मैम्बरों ने मुझ पर सवालों की झड़ी लगा दी, परन्तु मुझसे एक भी सवाल का उत्तर न बन पड़ा। अन्त में जब मेरे परिवार की सेवाओं का सवाल आया तो मैंने झट जेब से घड़ी निकाल कर सामने रख दी।

"यह क्या है?" बोर्ड के चेयरमैन विस्मित होकर बोले।

"यह एक घड़ी है।" मैंने झट जवाब दिया।

"हां हां, यह तो मैं भी देखता हूं कि यह एक घड़ी है।"

"श्रीमान्" मैंने मुस्करा कर कहा, "यह घड़ी सोने की है और मेरे पिताजी को इनाम में मिली है।"

"बहुत खूब" एक और मेम्बर बोला—"और कोई सेवा ..."

मैंने कहा—"लड़ाई में मेरे दादा के दादा की एक टांग जाती रही थी।"

"कोई सबूत? कोई सार्टीफिकेट?"

मैंने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—"सार्टीफिकेट तो कोई नहीं, परन्तु मेरी दादी ने अनेक बार मुझे बताया है कि मेरे दादा के दादा ..."

मेरी बात पूरी होने से पहले ही वे हँस पड़े। आखिर चेयरमैन ने कहा—"अब आप जा सकते हैं।"

डिप्टी कमिश्नर साहब का पत्र आया कि सरकार तुम्हारे बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेने पर बहुत प्रसन्न है, और तुम्हारे इस साहस पूर्ण कार्य के लिए तुम्हे पुरस्कार स्वरूप तहसीलदार, डिप्टी या पुलिस कप्तान नियुक्त करती है। परन्तु कई महीने बीत गए और सिवाय एक साइकिल चालान के कोई और सरकारी पत्र नहीं आया, तो हमने सोचा कि इस



प्रकार हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से तो काम चलेगा नहीं, कोशिश करनी चाहिए। सम्भव है सरकार को हमारे बी० ए० पास करने का पता ही न लगा हो। इतनी बडी सरकार है और आखिर उसे और भी बहुत से काम करने पडते हैं। यह सोचकर आखिर हम आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठ गए। वहां जाकर पता लगा कि—

"अभी इश्क़ के इम्तिहां और भी है।"

और "सितारो से आगे जहां और भी है।"

यहां बी० ए० से भी बडी डिग्रियां हैं, और उन डिग्रियो के मालिक भी यहां परीक्षा के लिए आए हुए है। मन उदास और खिन्न-सा हो

गया। इसी कारण पर्चे अच्छे न हुए। रही सही कसर इंटरव्यू ने पूरी कर दी। यह इन्टरव्यू भी अजीव वला है। हमने यह विषय बी० ए० में काहे को पढ़ा था। यह तो खैर हुई कि मैंने सावधानी वरती और पिताजी की सोने की घडी साथ लेता गया, जो उन्हें इनाम में मिली थी, वरना वडी हेटी होती। इन्टरव्यू वोर्ड के चेयरमैन वडे ही सहज स्वभाव के थे। वडे ही प्यार से कहने लगे—"तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने कांपती हुई आवाज में अपना नाम वताया तो वोर्ड के दूसरे मेम्वर झट वोल उठे—"डरते क्यों हो? खुलकर वात करो। हम तुम्हें खा तो नहीं जाएंगे।" मैंने उत्तर दिया—"मैं किसी से नहीं डरता। मेरा वाप नम्वरदार है।"

वोर्ड के मैम्वरो ने मुझ पर सवालो की झडी लगा दी, परन्तु मुझसे एक भी सवाल का उत्तर न वन पडा। अन्त में जव मेरे परिवार की सेवाओ का सवाल आया तो मैंने झट जेव से घडी निकाल कर सामने रख दी।

"यह क्या है?" वोर्ड के चेयरमैन विस्मित होकर वोले।

"यह एक घडी है।" मैंने झट जवाव दिया।

"हां हां, यह तो मैं भी देखता हूं कि यह एक घडी है।"

"श्रीमान्" मैंने मुस्करा कर कहा, "यह घडी सोने की है और मेरे पिताजी को इनाम में मिली है।"

"वहुत खूव" एक और मेम्वर वोला—"और कोई सेवा"

मैंने कहा—"लडाई में मेरे दादा के वावा की एक टांग जाती रही थी।"

"कोई सवूत? कोई सार्टीफिकेट?"

मैंने हिचकिचाते हुए उत्तर दिया—"सार्टीफिकेट तो कोई नहीं, परन्तु मेरी दादी ने अनेक वार मुझे वताया है कि मेरे दादा के दादा"

मेरी वात पूरी होने से पहले ही वे हंस पडे। आखिर चेयरमैन ने कहा—"अव आप जा सकते हैं।"

जितेन्द्र और उपेन्द्र अपनी कुर्सियों पर इस तरह सहमे बैठे थे, जैसे किसी मास्टर की घुडकी से बच्चे सहम कर बैठ जा



आतिशदान में जलती हुई लकडियो पर तेज-तेज शोले चमक जाते थे

एक क्लब के सब से पुराने मेम्बर ने अपना झुका हुआ सिर उठा और सुक्खो के म्लान मुख की ओर देखकर कहा—

"बेटा सुक्खो, ग़म खाने से क्या होता है। इन्क़लाब के लिए का करो, और शुक्र करो कि अपने आध्यात्मिक प्रेम के बावजूद जिंदा हो वरना अगर तुम किसी बुर्जुवाई उपन्यास के हीरो होते तो इस घटना बाद निश्चय ही आत्म-हत्या कर लेते।"

की क्या क़ीमत है। बी० ए० की डिग्री तो एक बेकार, काग़ज़ का टुकडा है। यहा कद चाहिए, छाती चाहिए, शरीर और स्वास्थ्य चाहिए, सरकार की सेवा का रिकार्ड और उठने-बैठने के सभ्य शिष्ट ढग और रईसाना ठाठ-बाठ चाहिए। वह दिन लद गए, जब बाप आलू-छोले बेचता था और बेटा बी० ए० पास करके, झट डिप्टी बन जाता था। अब तो स्थिति यह है कि यदि बाप डिप्टी है तो बेटा आलू-छोले बेच रहा है। दो-चार दिन हुए मेरे मुहल्ले के डिप्टी साहब मुझ से फिर मिले। उनके लडके ने भी हाल ही में बी० ए० पास किया था। मुझसे कहने लगे—"भई, तुम बहुत से मुकाबले के इम्तहानों में बैठे हो, हमको भी राय दो कि लडके को कहां भेजें ?"

मैंने कहा—"श्रीमान्, इसे मुकाबले के किसी इम्तहान में न भेजिएगा।"

"तो फिर क्या करूँ ?" डिप्टी साहब झुझला कर बोले—"इसे इतना पढाया है, बी० ए० है !"

मैंने बडे ही नम्रस्वर में पूछा—"डिप्टी साहब, आपके घर में सिवाए आपके किसी और ने भी सरकारी सेवा की है ?"

डिप्टी साहब रुक-रुक कर बोले—"ऊँ हूँ .. नहीं, लेकिन सुना है कि हमारे एक दूर के रिश्तेदार ने ग़दर में किसी अंग्रेज़ की जान बचाई थी कुछ ठीक याद नहीं कोशिश करूँ तो ।"

मैंने कहा—"वही,मेरे दादा की टांग वाला किस्सा है।"

डिप्टी साहब चौंके—"क्या कहा आपने ?"

"कुछ नहीं", मैंने उत्तर दिया—"मैं तो यही कहता हूँ कि उसे किसी रोल में न भेजें और आगे भी न पढ़ाएं, सब डिग्रिया बेकार हैं। उसे किसी व्यापार में डालिए। जूतो की दूकान ।"

"जूतो की दूकान ?" डिप्टी साहब ने क्रोध में आकर कहा।

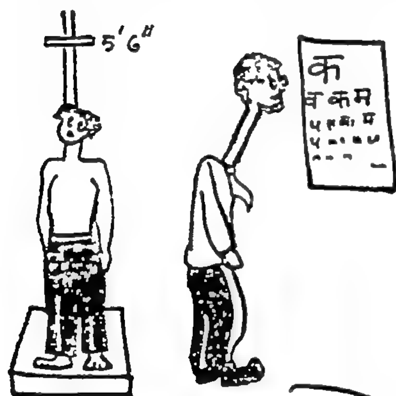
"या कोयलों की दूकान।" मैंने स्वाभाविक रूप से कहा।

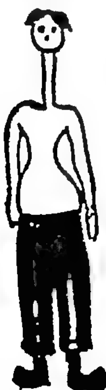
डिप्टी साहब सडक पर थूकते आगे बढ गए।

मैं जेव में घडी डालकर वाहर निकल आया। कुछ समय वाद आई० सी० एस० का नतीजा निकला तो मेरा नाम भी उसमें था, परन्तु दो सौ नित्यानवे नम्वर पर।

× × ×

आई० सी० एस० के वाद वेचारा गरीव वी० ए०, कई चक्कर काटता है और कितने ही पापड वेलता है। कभी इन्टरव्यू में फेल, कभी पर्चों में गोल। फौज और पुलिस के लिए कद छोटा निकलता है या अगर कद ठीक तो छाती कम चौडी निकलती है। कहना यह कि प्रत्येक डाक्टरी परीक्षा में कोई न कोई दोष अवश्य निकल आता है। आई० सी० एस० में उसकी आंखें कमजोर थीं, पी० सी०एस० में उसके फेफडे मजवूत न रहे, जव तहसीलदारी की परीक्षा के लिए पहुंचा तो उसे दिल का दौरा पडने लगा था, और आखिर में जव वह सरकारी क्लर्कों की परीक्षा में सम्मिलित हुआ तो डाक्टरों के वोर्ड ने घोषणा कर दी कि इसका दिमाग कमजोर है और सम्भव है कि दो-चार महीनो में पागल हो जाए।







इन मजिलो से गुजरकर उसे पता चलता है कि अकेली वी० ए० की डिग्री

सेहत खराब है ! १६.

उर्दू के विख्यात कवि 'गालिब' ने लिखा है—"दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।" परन्तु गालिब यह भूल गया कि बहुधा जब दवा हद से बढ जाती है तो वह स्वय एक दर्द बन जाती है। परन्तु इन दोनों स्थितियो से परे एक और विलक्षण स्थिति भी होती है, जिसमें न कोई दर्द होता है न कोई दवा, बस केवल एक कल्पना ही होती है। जो बढ़ते-बढते दर्द का रूप धारण कर लेती है, यहा तक कि अच्छे भले आदमी भी कहने लगते है कि "भाई, मेरा तो स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया है।"

दूसरों के सम्बन्ध में लिखने से पहले अपना उदाहरण देता हूँ। बचपन में मुझे थूकने की बहुत बुरी आदत थी। मा-बाप के रोकने पर भी मैंने इस आदत को नहीं छोडा। जब कोई टोकता तो कह देता था, "भई, क्या करूँ ? गले में थूक बहुत है, इसलिये बार-बार थूकना पडता है।" इस सम्बन्ध में कई डाक्टरो से भी परामर्श लिया गया। किसी को मेरे गले में कोई दोष दिखाई न दिया। दिखाई भी कहा से देता ? वह केवल वहम था, कोरी कल्पना, जिसका निदान असम्भव था। परि-[illegible]म यह हुआ कि जो एक बुरी आदत थी वह रोग बन गई। बीस-[illegible]चीस वर्ष की आयु में यह एक पक्का रोग बन गया और मैं बार-बार मिलने-जुलने वालो से यही कहता कि "भई, क्या करूँ, मेरा तो गला इतना खराब है कि ।"

मैं यह तो कहने को तैयार नहीं हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन

जिनेन्द्र और उपेन्द्र अपनी कुर्सियों पर इस तरह सहमे हुए बैठे थे, जैसे किसी मास्टर की घुड़की से बच्चे सहम कर बैठ जायें।



आतिशदान में जलती हुई लकड़ियों पर तेज तेज शोले चमक जाते थे। यकायक क्लब के सब से पुराने मेम्बर ने अपना झुका हुआ सिर उठाया और सुक्खो के म्लान मुख की ओर देखकर कहा—

"बेटा सुक्खो, ग़म खाने से क्या होता है। इन्क़लाब के लिए काम करो, और शुक्र करो कि अपने आध्यात्मिक प्रेम के बावजूद जिंदा हो, वरना अगर तुम किसी बुर्जुवाई उपन्यास के हीरो होते तो इस घटना के बाद निश्चय ही आत्म-हत्या कर लेते।"

रहती है। अस्तु, आइये, बैठिये, कहिये आपके लिये क्या मगाऊँ? चाय या लस्सी?" फिर कुशल-क्षेम की वात-चीत हो चुकने के वाद चाय आएगी तो यदि आप एक प्याला पिएगे तो वे चार प्यालों से कम नहीं पिएगे और साथ में कम-से-कम पाव भर दालमोठ भी डकार जाएगे। अट्टहास करते हुए आपको हास्य-विनोद की वातें भी सुनाते रहेंगे—क्योंकि उनका स्वास्थ्य खराव है, सर में हल्का-हल्का दर्द रहता है, शरीर टूटता है और धीमी-धीमी हरारत महसूस होती रहती है।

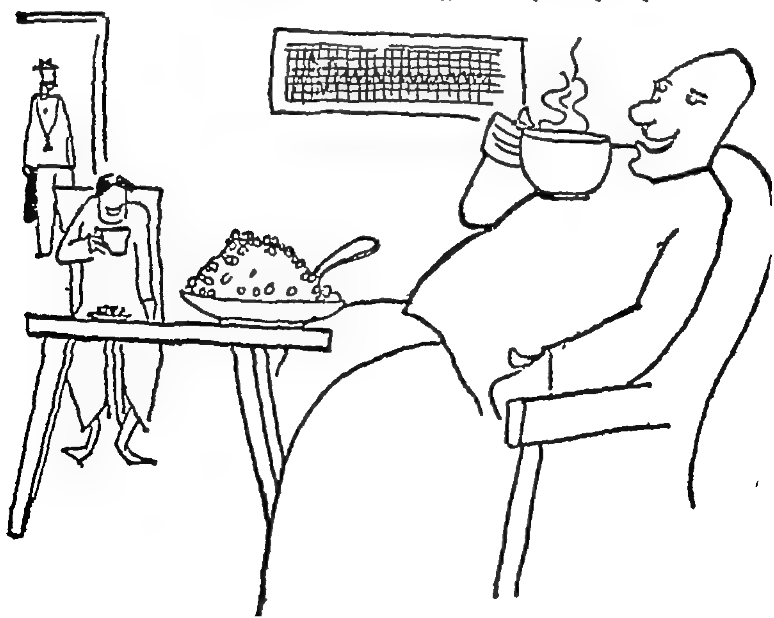
सर में दर्द और पेट में दर्द ऐसे रोग हैं जिनका निदान कोई चिकित्सक, हकीम या डाक्टर नहीं कर सकता। कोई ऐक्स-रे इन दर्दों का चित्र नहीं खींच सकता। यही वात 'शरीर टूटने' की है। यह कोई पेड़ की शाखा टूटने की तरह तो है नहीं कि उधर शाखा टूटी और इधर देखने वाले को दिखाई दे गई। रहा शरीर में हरारत महसूस होने का प्रश्न। तो यदि शरीर में हरारत नहीं होगी तो मनुष्य जीवित कैसे रहेगा? परन्तु मेरे मित्र पर इन वातो का कोई प्रभाव नहीं पडता। वे गम्भीर होकर, मुंह बनाकर, हाथ आगे कर देते हैं और कहते हैं—"भई विश्वास नहीं होता तो लो स्वय देख लो कि हल्का-हल्का ज्वर है या नहीं।" परन्तु आप जव हाथ देखते हैं तो वह आपको अपने हाथ की अपेक्षा ठडा लगता है। आप कह देते हैं—"साहव, आपको तो ठडा ज्वर है।" यही ठंडा ज्वर वह काल्पनिक रोग है जिसका मैंने ऊपर वर्णन किया है। परन्तु वे सज्जन ठंडे ज्वर का नाम सुनकर चिढ जाते हैं।

ठंडा ज्वर वहुत से लोगो को होता है, परन्तु इसका सवसे दिलचस्प अनुभव एक बैंक के मैनेजर को हुआ। एक क्लर्क उसके पास छुट्टी का आवेदन-पत्र लेकर आया और कहने लगा—"साहव, ज्वर आ रहा है, छुट्टी चाहिये।"

मैनेजर ने पूछा, "वैल, मैन! क्या वात है?" क्लर्क ने उत्तर दिया, "साहव, वुखार है।" यह कहकर उसने अपना हाथ आगे वढा दिया। मैनेजर ने हाथ छुआ तो बिलकुल ठडा था। क्लर्क ने कहा, "साहव, हम

में एक वहम पाल लेता है जो आगे चलकर उसके जी का जंजाल बन जाता है और उसका स्वास्थ्य बिगाड़ देता है, परन्तु यहां कुछ उदाहरण ऐसे अवश्य पेश करूंगा जिनसे प्रकट होगा कि बहुत-से रोगी किसी वास्तविक रोग में नहीं, वरन् किसी काल्पनिक रोग में फंसे रहते हैं। सम्भव है आपने भी कोई ऐसा काल्पनिक रोग पाल रखा हो जिसे अपने मस्तिष्क के कोने में से ढूंढ निकालने में आपको यह लेख पढ़कर सहायता मिलेगी।

मेरे एक मित्र हैं—नाम नहीं बताऊंगा—जिनका स्वास्थ्य देखने में बहुत अच्छा लगता है, हंसते भी बहुत जोर से हैं, खाने-पीने में भी अपने किसी साथी से पीछे नहीं हैं, परन्तु उनसे जब मिलने जाइये, वे सो रहे होते हैं। उसके बाद जब भी आप पूछिये—कहिये, कैसा जी है ? तो तुरन्त उत्तर देंगे—"भई, अपने स्वास्थ्य से तंग आ चुका हूँ। सर में हर समय हल्का-हल्का-सा दर्द रहता है, शरीर टूटता रहता है, हरारत भी



१० वजे श्रानन्द से सो जाते ह—क्योंकि स्वास्थ्य खराव है।

जिन लोगो का स्वास्थ्य अधिक खराव होता है वे हिन्दुस्तान में भी नहीं रहते—हिन्दुस्तान से वाहर रहकर वे लोग स्वास्थ्य सुधारने में लगे रहते हैं। जिसका स्वास्थ्य जितना खराव होता है वह हिन्दुस्तान से उतना ही दूर जाता है। मेरे एक मित्र इसी स्वास्थ्य के चक्कर में तेहरान में अपने जीवन के दिन पूरे कर रहे है। एक अन्य मित्र है जो वेचारे ग्यारह वर्ष से पेरिस में पडे हुए है। एक और सज्जन है जिन्हे स्विट्जरलैंड के के अतिरिक्त और कोई प्रान्त रास नहीं आता। एक सज्जन पिछले पन्द्रह वर्षों से होनो लूलू में मृत्यु-शैया पर पडे है। प्रत्येक पत्र में वे लिखते है कि "वस यह मेरा अन्तिम पत्र है, अन्तिम विदा!" इन पन्द्रह वर्षों में उनके वहुत से स्वास्थ्य, हट्टे-कट्टे मित्र जिन्हे कोई रोग न था, इस असार ससार से कूच कर चुके है, परन्तु मेरे मित्र पन्द्रह वर्षों से लगातार होनो-लूलू में डटे हुए है और स्वास्थ्य सुधारने में लगे रहते है। इसके सिवाय दिन भर इनके पास और कोई काम भी तो नहीं होता। उदाहरण के रूप में मेरे पेरिस-स्थित मित्र को लीजिये। इन वेचारो का दिन भर का प्रोग्राम कुछ इस प्रकार का होता है—

प्रात उठे, चाय पी और चाय के साथ विटामिन 'ए' की एक गोली ले ली। फिर शेव वनाकर गरम पानी से नहाए और कलेवा देने वाली वेट्रेस से हँसकर दो-चार वातें कीं। कलेवा वहुत सक्षिप्त-सा होता है। दो उवले अडे, आध पाव मक्खन, फ्रासीसी शहद, अगूर की जैली, मादाम लफ्रांसवां के हाथ के तले हुए चिकन-टोस्ट या गुदी टोस्ट। खस्ता फ्रासीसी ब्रैड और फ्रासीसी शराव की एक वोतल और उसके साथ [illegible]न वी सी. डी. की एक मोटी गोली। यह है सक्षिप्त-सा कलेवा जिस पर इन्हें गुजारा करना पडता है।

कलेवा करने के वाद कपडे पहने और छडी हाथ में लेकर निकट के पार्क की ठडी छांव में मुलाकात करने और उस दिन के लिए नये रोग का नाम उनसे मालूम करने में थोडा समय लगा दिया। वहा से

"एक लीग बनाई जाए, लीग यानि सस्था। जिसकी सारे भारत में शाखाएं हो। इस लीग के कम से कम एक लाख मेम्बर हों और हर मेम्बर से एक प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत कराए जाएं कि महीने में कम से कम वह दो रुपए की किताब अवश्य खरीदेगा। इस प्रकार किताबों की निकासी के साथ-साथ लेखको की रोटियो का भी सन्तोषजनक प्रबन्ध हो सकता है।"

नरेन्द्र ने उछलकर कहा "वाह, क्या सुन्दर योजना है। न जाने पहले किसी को क्यों न सूझी। मगर इसको शुरू कैसे किया जाए?"

"यह शुरू करने की बात जरा कठिन है", मैंने कहा "लीग का प्रधान कौन हो? इसके नियम क्या हों? इसकी कार्यवाही किस भाषा में हो और चन्दा लाने और रखने के लिए एक ईमानदार आदमी को कहां ढूंढा जाए?"

'बन्धुवर!" प्रकाशक महोदय ने मुझे चुप कराने के लिए कहा, "तुम्हें तो बात की खाल उतारने और बात का बतगड बनाने की बुरी आदत हो गई है। अमां यह सब बातें दोस्तो के सहयोग से सुलझाई जा सकती हैं। हमको प्रोपेगंडा करना चाहिए और पंमफ्लेटो द्वारा लोगों को बताना चाहिए कि मांगकर किताबें पढ़ने के क्या-क्या नुकसान हैं। सच यह है कि पढ़े-लिखे लोगों में साहित्य का सक्रिय सरक्षण करने की भावना जगानी चाहिए। साहस और लगन से काम करने की देर है— लाख मेम्बर बना लेना कोई कठिन काम नहीं। और जिस दिन लाख मेम्बर बना लिए गए, साहित्य की काया पलट हो जाएगी।

"काया पलट नहीं, काया-कल्प कहिए। यह आजकल का फैशन हो गया है जो जोरनाफ के बन्दरो से शुरू हुआ और मालवीय जी तक जा पहुंचा, और अब आप इसे साहित्य पर आजमाना चाहते हैं।" मैंने तनिक तेज होकर कहा, "भला कहीं पंमफ्लेट बाजी से पढ़े-लिखे लोगों की आदत को बदला जा सकता है? यह आपकी लीग कागजी बनकर रह जाएगी और प्रतिज्ञा-पत्र पर कोई न चलेगा। आप कैसी आध्या-

ताछ् करने के बाद ये दोनो रोगी एक-दूसरे की कमर में हाथ डाल कर, एक-दूसरे को मानो ससार के कष्टो के मुकावले के लिये सहारा देते हुए, डिनर खाते हैं। फिर ये नगी स्त्रियो का नाच देखने में अथवा किसी रात्रि-क्लव में नाच-गान में चार वजे तक का समय जैसे-तैसे व्यतीत करते हैं। स्वास्थ्य खराब रहता है।

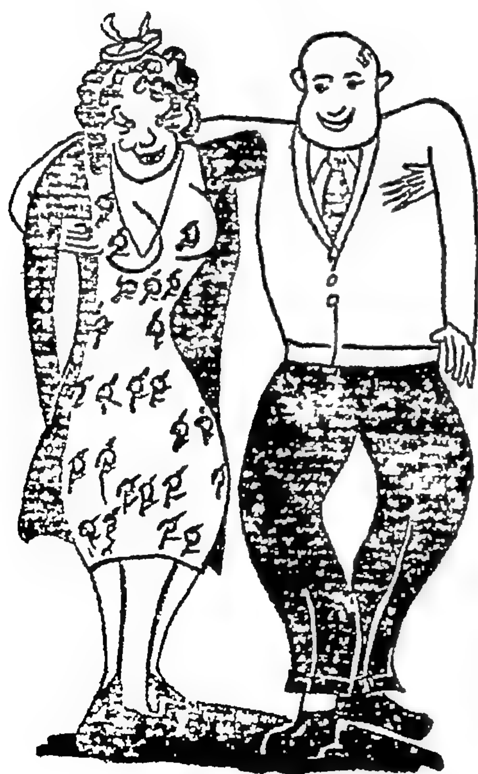
यदि मैं यह कहूँ कि खराब स्वास्थ्य रखने वाले व्यक्ति साधारणतया हट्टे-कट्टे एव मोटे-ताजे होते हैं तो यह चित्र का एक पहलू है। एक दूसरा पहलू भी होता है। कुछ लोग हैं जो वास की भाति लम्वे और पतले होते हैं, परन्तु वे किसी देव की भांति खाते हैं। कुछ लोग चूहों की भाति पतले और मरियल दिखाई देते हैं, परन्तु वे खाने की मेज के शेर होते हैं। आप यही सोचते रह जाते हैं कि इस दुवले-पतले शरीर में वह कौन-सी गुप्त कमानी या कल लगी हुई है जो दस आदमियों के भोजन को इस पतले ते शरीर में ठूंस देती है, वल्कि इस प्रकार लोप-कर देती है कि मेज पर सिवाय खाली हाथो के और कुछ नहीं रहता। इसके वाद ये सज्जन हाथ खींच कर कहते हैं—"भई, स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है। नहीं तो !" तोवा ! नहीं तो हमें भी खा लेते ?



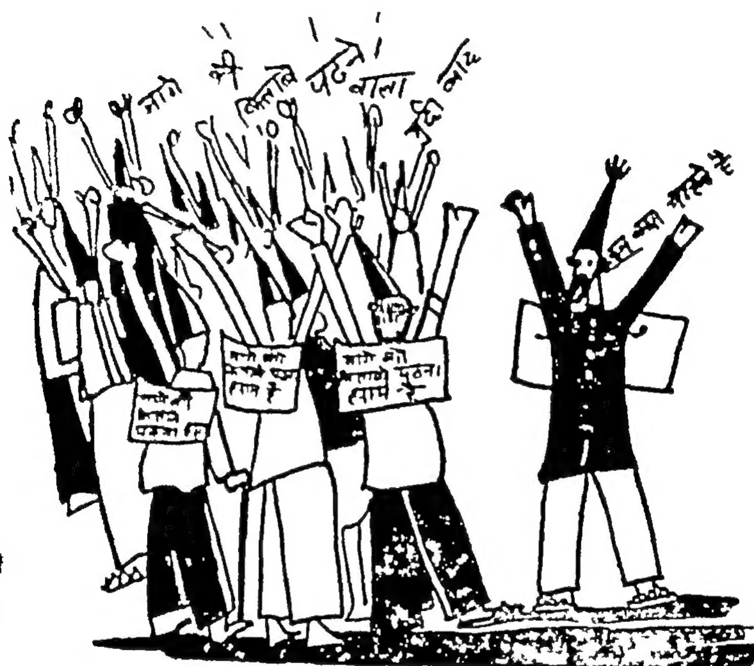
वहम जव पक्का हो जाता है तो वह केवल काल्पनिक वात नहीं रहता, वरन् पागलपन का रूप धारण कर लेता है। मैं एक साहव को जानता हूं जिन्हें यह वहम था कि वे काच के वने हुए है। अत

लौटे और यदि धूप खिलती हुई महसूस हुई तो नदी के किनारे मछलियां पकड़ने चले गए। वहा उनकी ऐसे मित्रों से भेंट होगी जिनका स्वास्थ्य उनसे भी अधिक खराब होगा। ऐसे लोगों से मिलकर उन्हें कुछ सन्तोप, कुछ सान्त्वना का अनुभव होता है। होटल में वापस आकर लच खाया। लच भी कलेवा की भाति बहुत सक्षिप्त-सा होता है। छ: कोर्स के लच के बाद शराब की एक बोतल। उसके बाद विटामिन ई., एफ., जी, एच. आदि की एक एक गोली। उसके बाद आराम करने के लिये बिस्तर पर लेट गए।

ढाई बजे सोए थे, जब जागे तो पांच बज रहे थे। जल्दी-जल्दी उठे, चाय पी, चाय लानेवाली वेट्रेस से हंसकर दो बातें कीं, गरम पानी से नहाए, कपडे बदले और घर से बाहर निकल पडे। घूमने के सिलसिले में कई कार्य हो जाते हैं। घूमते हुए डाक्टर की दूकान पर पहुंचे, जहां ताक़त का इन्जैक्शन लिया। फिर बाग में घूमने चले गए जहां मादाम रूवेल या मादमोजेल लूफरा, जिनका स्वास्थ्य इनके स्वास्थ्य की भांति खराब होता है, इनकी प्रतीक्षा कर रही होती हैं। एक-दूसरे रोग के सम्बन्ध में



और मैं उत्तर में कहता हूँ—"मांगे की किताब. . . ." अरर र गल्ती हुई। मुझे कहना चाहिए था—"किताबों की विक्री।" खैर इस भरे जलूस में तूती की आवाज कौन सुनता है ?



नरेन्द्र चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है—"मांगे की किताबें पढने वाला ?"

हम सब मिलकर चिल्लाते हैं—"मुर्दाबाद।"

और इस तरह शोर मचाता, गले फाडता हुआ यह जलूस बाजारों में से गुजर जाता है।

आर्थिक और नैतिक दृष्टिकोण की बात अलग, पर यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो आनन्द मांगे की किताबें पढ़ने से मिलता है, वह उन्हें खरीद कर पढने से प्राप्त नहीं होता। किताब खरीद कर